विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष-१५ अगस्त १९९६ अंक-८

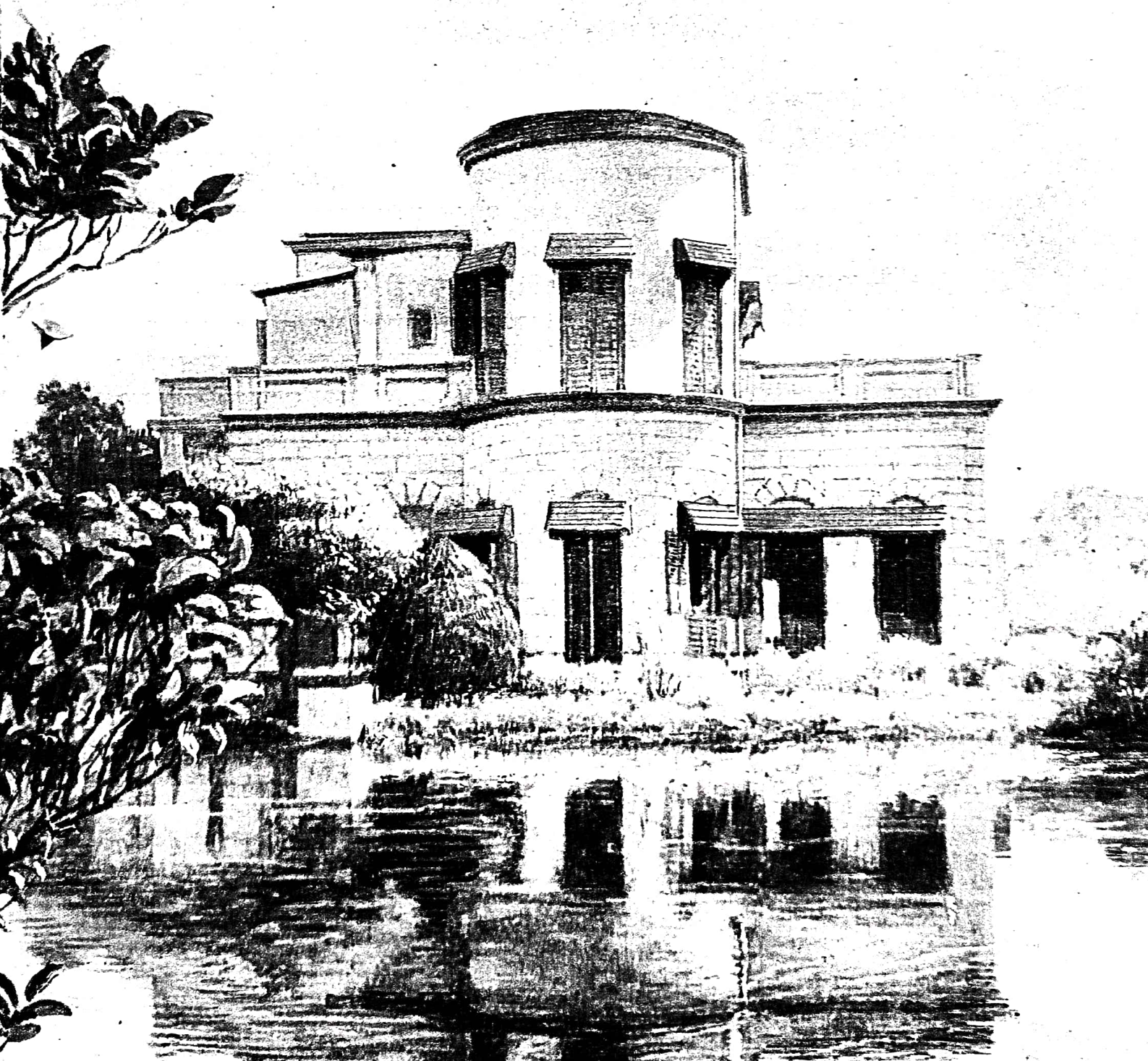

रामकृष्ण निलयम् [illegible] प्रकाशन [illegible] फुरा ८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिक्षा के आजीवन सदस्य

१३१. श्री जी. के. दोशित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३ श्री पूनम चन्द्र जैन– लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स-मंडेरदिशा(आ.)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल—लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमूभाई पटेल—बड़ौदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२. महावीर बाल वाचनालय-चन्दावलनगर(राज.)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र –एन० सी० हिल्स
१४९. श्री वी० वी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल – नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी —इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी – जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा – काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५७. श्रीमती गिरजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, नईदिल्ली)
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म०प्र०)
१६१. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०)
१६२. श्री डी०एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६४. डा०(श्रीमती)रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ०प्र०
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६७. कुमारी जसवीर कौर आहूजा पटियाला पंजाब
१६८. श्रीमती मंजुला बोर्दिया उदयपुर (राजस्थान)
१६९. श्रीमती सुरेश अम्बाला शहर (हरयाणा)
१७०. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ०प्र०)
१७१. श्री एस० टी पुराणिक नागपुर
१७२. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी कलवानी
१७३. डॉ० कमलाकांत बड़ोदा (गुजरात)
१७४. डॉ० विनया पेण्डसे उदयपुर (राजस्थान)
१७५. सन्तोष बोनी रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७६. श्री राजौभाई बी० पटेल सूरत (गुजरात)
१७७. श्री प्रकाश देवपुरा उदयपुर (राजस्थान
१७८. श्री एस० के० मुन्दरा जामनगर (गुजरात)
१७९. डॉ० मोहन वन्सल आनन्द (गुजरात)
१८०. अड़किया कन्सलटेन्ट्स प्रालि मुम्बई (गुजरात)
१८१, सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)

इस अंक में

			पृष्ठ
१.	श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२.	विनय (कविता)	गोस्वामी तुलसीदास	२
३.	प्रेसिडेन्ट महाराज के साथ एक अपराह्न	श्रीहर्ष दत्त	३
४.	भक्तशिरोमणि महात्मा तुलसीदास	डॉ० रामशंकर सिंह	१९
५.	विज्ञान एवं मानवीय मूल्य (४)	श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द	२२
६.	दीन, धर्म और भारतीयता	श्री एस० बशीरुद्दीन	२५
७.	देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	२९
८.	श्रीरामकृष्ण और उनके सन्देश	स्वामी विवेकानन्द	३२

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ अगस्त—१९९६ अंक—८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखतो अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
। शशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

'बाउल' सम्प्रदाय के फकीर जैसे एक हाथ से इकतारा और दूसरे हाथ से डफली बजाते हैं और साथ ही मुँह से भजन भी गाते जाते हैं, वैसे ही, हे संसारी जीव, तुम भी हाथों से संसार के काम-काज करते रहो, परन्तु मुँह से ईश्वर का नाम जपना न भूलो।

(२)

वह मनुष्य धन्य है जिसका मस्तिष्क और हृदय दोनों ही समान रूप से विकसित हुए हैं। सभी परिस्थितियों में वह सरलता के साथ उत्तीर्ण हो जाता है। भगवान् के प्रति उसमें सरल विश्वास और दृढ़ श्रद्धा-भक्ति होती है, साथ ही उसके आचार व्यवहार में भी कहीं कोई कमी नहीं होती। सांसारिक व्यवसाय के समय वह पूरा-पूरा व्यवसायी होता है, विद्वान् पंडितों की सभा में वह सर्वश्रेष्ठ विद्वान् सिद्ध होता है, वाद-विवाद में अकाट्य युक्तियों द्वारा वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देता है। माता-पिता के सम्मुख वह विनयी आज्ञाकारी होता है, आत्मीय-स्वजन और मित्रों को वह अतिशय प्रिय प्रतीत होता है, पड़ोसियों के प्रति वह दया और सहानुभूति रखता और सदा उनकी मदद के लिए तैयार रहता है, पत्नी के सामने वह मानो साक्षात् मदनदेवता होता है। इस तरह का मनुष्य वास्तव में सर्वगुणसम्पन्न होता है।

(३)

तुम दूसरों से जिस काम की अपेक्षा रखते हो वह तुम स्वयं करो।

विनय

—गोस्वामी तुलसीदास

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भगति-सुर-सरिता, आस करत ओसकन की ॥१॥

धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की ॥२॥

ज्यों गज-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आनन की ॥३॥

कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि ! जानत हौ गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥४॥

भावार्थ – इस मन की ऐसी मूर्खता है कि यह श्रीराम की भक्तिरूपी गंगाजी को छोड़कर ओस की बूँदों से तृप्त होने की आशा करता है ॥१॥

जैसे प्यासा पपीहा धुएँ का गोट देखकर उसे मेघ समझ लेता है परन्तु वहाँ (जाने पर) न तो उसे शीतलता मिलती है और न जल मिलता है: उलटे धुएँ से आंखें और फूट जाती हैं। (यही दशा इस मन की है) ॥२॥

जैसे मर्ख बाज काँच की फर्श में अपने ही शरीर की परछाईं देखकर उस पर चोंच मारने से वह टूट जायगी, इस बात को भूख के मारे भूलकर जल्दी से उस पर टूट पड़ता है (वैसे ही यह मेरा मन भी विषयों पर टूट पड़ता है) ॥३॥

हे कृपा के भण्डार ! इस कुचाल का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ ? आप तो दासों की दशा जानते ही हैं। हे स्वामिन् ! तुलसीदास का दारुण दुःख हर लीजिए और अपने (शरणागतवत्सलतारूपी) प्रण की रक्षा कीजिए ॥४॥

साक्षात्कार

प्रेसिडेन्ट महाराज के साथ एक अपराह्न

—श्री हर्ष दत्त, (कलकत्ता)

(रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वर्तमान परम अध्यक्ष पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने २४ जनवरी १९८९ को रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष का पद-भार ग्रहण किया। उसके एक महीने बाद बंगला के प्रसिद्ध पत्र 'देश' की ओर से श्री हर्ष दत्त के द्वारा उनका जो साक्षात्कार लिया गया था वह 'देश' के २-५-१९८९ के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'विवेक शिखा' के पाठकों के लिए उस महत्वपूर्ण साक्षात्कार का हिन्दी अनुवाद डॉ० केदारनाथ लाभ ने किया है। हम उसे यहां 'देश' के प्रति आभारपूर्वक प्रकाशित कर रहे हैं। —सं०)

उन्नीस सौ तेइस ईस्वी में बाइस वर्ष के एक शिक्षित युवक ने श्रीरामकृष्ण के भावादर्श से प्रेरित हो मंत्रदीक्षा ली। युवक के दीक्षागुरु थे—स्वामी सारदानन्दजी महाराज। सारदानन्दजी श्रीरामकृष्ण की अन्यतम त्यागी सन्तान थे। वे परमहस देव के मात्र प्रत्यक्ष शिष्य ही नहीं, उनके कृपापात्र साधक और कर्मयोगी भी थे। सारदानन्दजी के अपने शब्दों में : "कल्पतरु होने के समय के अतिरिक्त भी ठाकुर ने अनेक बार अनेक लोगों की मनोकामना पूर्ण की थी। ऐसे ही एक दिन मुझे निकट खड़ा देखकर ठाकुर बोले, 'क्यों रे, तूने कुछ नहीं माँगा?' मैंने कहा, 'और क्या माँगू? इतना ही कर दीजिए कि जिससे मैं सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन कर सकूँ।' उत्तर में ठाकुर ने कहा, 'अरे, वह तो अन्तिम बात है रे।' मैंने कहा, 'सो मैं नहीं जानता महाराज!' तब ठाकुर बोले, 'ठीक है, तेरा होगा'।" इस घटना का वर्णन करने के बाद शरत्चन्द्र ने यह भी कहा—"उन्होंने जो कुछ कहा था, उनकी कृपा से अब उसका भलीभाँति अनुभव कर रहा हूँ।" (श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका, प्रथम भाग; स्वामी गम्भीरानन्द, पृष्ठ, २८०) परवर्ती काल में सारदानन्दजी श्रीश्रीमाँ सारदा देवी के 'प्रधान सेवक' थे। इसके साथ ही स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिष्ठित रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वे आजीवन प्रधान सचिव रहे।

लम्बे तीस वर्षों तक उन्होंने रामकृष्ण संघ के सचिव का 'गुरुभार असाधारण निष्ठा के साथ' वहन किया था। और उसके साथ-साथ "श्रीरामकृष्ण-स्वरूपिणी संघजननी श्रीमाँ के 'भार' वहन को" पराकाष्ठा सारदानन्दजी ने दिखायी थी। '.....श्रीमाँ जब तक नश्वर शरीर में वर्तमान थीं, तब तक वे ही थे माँ के प्रधान सेवक। श्रीमाँ कहा करतीं : 'शरत है मेरा भारवाहक।' व कहतीं : मेरा भार लेना क्या सहज है? शरत् के सिवा कोई और भार ले सकता है, ऐसा तो देखा

नहीं। वह मेरा वासुकी है, सहस्रफण होकर कितने कार्य करता है, जहाँ पानी बरसता है वहीं छाता पकड़ लेता है।' (शतरूपे सारदा : स्वामी लोकेश्वरानन्द सम्पादित, पृष्ठ ६२)

श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ के ऐसे कृपापात्र जो साधक थे, उनसे तेइस वर्ष की उम्र में मन्त्रदीक्षा लेकर उस युवक ने अपना जीवन धन्य किया था। इस युवक का नाम था विजयचन्द्र राय। विजयचन्द्र का जन्म १९०१ ई० में पश्चिमी बंगाल के बाँकुड़ा जिला के सोमसाड़ा गाँव में हुआ था। बचपन में ही विजयचन्द्र कलकत्ता चले आये। बागबाजार में अपने मामा के घर पर रहकर लिखना-पढ़ना किया करते। कलकत्ता के सरकारी संस्कृत कॉलेज से दर्शनशास्त्र में प्रतिष्ठा के साथ स्नातक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

विजयचन्द्र ने नितान्त किशोरावस्था में ही रामकृष्ण-विवेकानन्द के भावादर्श से अनुप्राणित हो गृहत्याग करने का संकल्प लिया था। किन्तु विवेकानन्द के साक्षात् शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज का साहचर्य प्राप्त कर उस संकल्प को उन्होंने त्याग दिया। उसके बदले में युवावस्था में, उसी दीक्षा प्राप्त करने के वर्ष ही, संन्यासव्रत ग्रहण कर विजयचन्द्र ने बेलुड़ मठ में योगदान किया। १९२८ ई० में श्रीरामकृष्ण की एक अन्य त्यागी सन्तान और श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्दजी महाराज से उन्होंने संन्यासव्रत ग्रहण किया। संन्यास-जीवन में विजयचन्द्र का नामकरण हुआ—स्वामी भूतेशानन्द।

रामकृष्ण भावादर्श में दीक्षित उस दिन के वही तरुण संन्यासी आज रामकृष्ण मठ-मिशन के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित हैं। व इन दिनों रामकृष्ण-भावानुरागी और सामान्य जनों में 'प्रेसिडेन्ट महाराज' के रूप में ज्ञात और पूजित हैं। गत १९८८ ई० के दिसम्बर महीने में स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज के महासमाधि में लीन हो जाने के उपरान्त मठ और मिशन के अध्यक्ष (प्रेसिडेन्ट) का पद रिक्त हो गया। स्वामी भूतेशानन्दजी गत २४ जनवरी १९८९ ई० को इस पद पर प्रतिष्ठित हुए। वे रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के बारहवें (द्वादशतम) अध्यक्ष हैं।

स्वामी भूतेशानन्दजी का साधुजीवन अत्यन्त कर्मबहुल है। "रामकृष्ण संघ में योगदान करने के बाद से १९२८ ई० तक वे बेलुड़ मठ में कार्यरत थे। १९३० से १९३२ ई० तक वे थे ढाका केन्द्र के सहायक कार्यसचिव। इसके बाद दो वर्षों तक वे मैसूर और मद्रास में विश्व-धर्मशास्त्र की शिक्षा प्रदान करने में लगे रहे। १९३६ ई० में वे शिलाँग केन्द्र के अध्यक्ष हुए। तब से १९४५ ई० तक उत्तर-पूर्वांचल के दरिद्रों एवं आदिवासियों के बीच उन्होंने सेवा-कार्य का संचालन किया। तदुपरान्त १९४५ ई० से १९६६ ई० तक, सुदीर्घ इक्कीस वर्षों तक वे राजकोट केन्द्र के अध्यक्ष थे। १९६५ ई० में वे रामकृष्ण मठ के न्यासी (ट्रस्टी) और रामकृष्ण मिशन की संचालन समिति के सदस्य निर्वाचित हुए। १९६६ ई० के मार्च महीने में वे रामकृष्ण मठ और मिशन के अन्यतम सह-सचिव होकर बेलुड़मठ आये और १९७० ई० के अप्रैल महीने में रामकृष्ण संघ के परम उपाध्यक्ष होने के पहले तक उसी पद पर कार्य किया। उपाध्यक्ष होने के उपरान्त वे काँकुड़गाछी स्थित योगोद्यान मठ के अध्यक्ष पद पर भी आसीन थे।" (उद्बोधन: फाल्गुन ११९५, वर्ष ९१, संख्या २, पृ० ६४)

प्रेसिडेन्ट महाराज एक साथ ही शास्त्रज्ञ, सुवक्ता, वाग्विदग्ध सुपण्डित और विभिन्न धर्मग्रन्थों के रचयिता हैं। उनके मधुर व्यक्तित्व, आन्तरिकता-पूर्ण व्यवहार, और प्रत्येक व्यक्ति के प्रति उनके माँ

के समान स्नेह और प्रेम का प्रत्यक्ष परिचय हमलोगों ने पाया है। वे अनेक व्यक्तियों के दीक्षामंत्र के गुरु मात्र ही नहीं, उनके बिल्कुल अपने और परम आत्मीय भी हैं।

विगत ११ मार्च को भूतेशानन्दजी महाराज ने हमलोगों को कुछ देर के लिए अपनी संगति प्रदान की थी—बेलुड़ मठ के अपने निवास भवन में। हमलोग जब बेलुड़ मठ पहुँचे, उस समय अपराह्न की वेला थी। मठ का द्वार उस समय भी सामान्य लोगों के लिए नहीं खुला था। सारे मठ-प्राङ्गण में शान्तिपूर्ण एक अद्भुत निःशब्दता विराज रही थी। लगता था, जैसे यहाँ एक अनन्त काल की साधना मूर्त्तरूप धारण कर शुद्ध हो गयी है। प्रेसिडेन्ट महाराज शान्त चित्त से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने हमारी विभिन्न जिज्ञासाओं के उत्तर दिये हैं अत्यन्त प्रशान्त तन्मयतापूर्वक—अनुत्तेजित स्वर में, उदाहरणों के साथ, तथापि सहज-सरल भाषा में।

अन्तरंग और अबाध साक्षात्कार के अन्त में इन चिरप्रणम्य, सर्वत्यागी संन्यासी ने मंद हास्य के साथ कहा, 'अब तक जो कुछ भी मैंने कहा वह सब ठाकुर की ही बात थी। मेरी नहीं। तुमलोग फिर आना।'

यह वार्तालाप उसी 'बात' का लिखित रूप मात्र है।

देश : रामकृष्ण मठ-मिशन तथाकथित धार्मिक संस्थानों की भाँति लोगों को आकर्षित करने के लिए गंडा-तावीज, माला-भस्म-भभूत या कोई भी मन्त्र-पूत अलौकिक वस्तु अथवा रोग-ताप के शमन के लिए जड़ी-बूटी, औषधि आदि कुछ भी नहीं देता। यहाँ तक कि उग्र गुरुवादी धारणाओं के दायरे से भी यह संघ अपने को दूर रखता है। तथापि, यह आश्चर्य का विषय है कि इन सब अभीष्ट उपकरणों को नहीं जानने पर भी, अनेकानेक व्यक्ति आज विभिन्न रूपों में इस संस्थान से जुड़ना चाहते हैं। श्रीरामकृष्ण-श्रीमां और स्वामी विवेकानन्द की भावधारा के संसर्ग में स्वयं को ले आने के लिए लोगों की आकुलता बढ़ी है। ऐसा क्यों होता है? इसका सम्भावित कारण क्या है?

भूतेशानन्दजी : देखो, मनुष्य की यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि संसार में वह जिस ताप-यातना को भोग रहा है, उससे वह त्राण पाना चाहता है। इसी त्राण पाने के लिए जो सब अलौकिक उपाय हैं, उनमें जिनका विश्वास है, वे सम्भवतः उसी ओर झुक पड़ते हैं। किन्तु सभी मनुष्यों को ये अलौकिक उपादान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाते हैं। जो अलौकिक चमत्कार के प्रति आकर्षित नहीं होते, वे तब लौकिक जीवन के बीच ही मुक्ति या त्राण की खोज करते हैं। श्रीरामकृष्ण-भावधारा की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमें हमलोग ऐसी बातें और भाव, इस मुक्ति के उपाय के रूप में पाते हैं, जिन्हें मनुष्य समझ सकते हैं, स्वभावतः ही समझ पाते हैं। किसी भी अलौकिक वस्तु या विश्वास के ऊपर उसे निर्भर नहीं करना होता। सामान्य मनुष्य इसी कारण से ठाकुर की भावधारा की ओर आकृष्ट होता है। यहाँ दुर्बोध्य, पहेलीनुमा कुछ भी नहीं है। सीधी, स्पष्ट, साफ-सुथरी बातें हैं। जैसे, ठाकुर कहते हैं, 'त्याग के बिना कुछ नहीं होगा' मनुष्य त्याग कर सके या न कर सके, किन्तु विषयवस्तु का तात्पर्य उसकी समझ के योग्य है। 'वासना का त्याग होने पर ही मनुष्य को शान्ति मिल सकती है।' यह भी आदमी समझ सकता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'भगवान में भक्ति जितनी बढ़ेगी, मनुष्य उतना ही सांसारिक दुःख-कष्टों के ऊपर उठ सकेगा।' इसे भी मनुष्य आसानी से समझ लेता है। इसीलिए श्रीराम-

कृष्ण सहज हैं। श्रीरामकृष्ण आसानी से समझने योग्य हैं। और उनके भाव भी सहज बोधगम्य हैं। वस्तुतः, इच्छित वस्तु पाने के लिए, लौकिक की अपेक्षा अलौकिक उपायों में हम घुस जाना चाहते हैं, किन्तु लौकिक उपायों के द्वारा ही उसे पाया जा सकता हो तो फिर अलौकिक की कोई आवश्यकता उसे नहीं रह जाती। श्रीरामकृष्ण ने जो कुछ कहा है उनमें कोई भी बात अलौकिक नहीं है। सब सहज स्वाभाविक है। इसके लिए अलौकिकता में विश्वास करने की जरूरत नहीं पड़ती। साधारण दृष्टि डालने पर ही मनुष्य उसे समझ सकता है।

देश : विज्ञान की विजययात्रा के इस युग में अलौकिक चमत्कारों के प्रति मनुष्य में ऐसी आस्था या विश्वास का रहना बड़े आश्चर्य का विषय नहीं है क्या ?

भूतेशानन्दजी : हाँ ! देखो, अलौकिकता के प्रति मनुष्य का विशेष झुकाव होने का कारण यह है कि मनुष्य ऐसी वस्तु पाना चाहता है, जिसकी कीमत चुकाने को वह तैयार नहीं है। श्रीरामकृष्ण इस प्रकार की कोई भी वस्तु देने का वादा नहीं करते। वे ऐसी ही बात कहते हैं, जो लौकिक जीवन के आचरण द्वारा रूपायित होगी। काफी सीधी बातों के द्वारा वे सब कुछ कहते हैं। उनकी सारी बातों का जीवन में प्रयोग करना शायद दुष्कर हो, किन्तु उन्हें समझना काफी सहज है। यह प्रसन्नता की बात है कि विज्ञान की शिक्षा से मनुष्य की समझदारी धीरे-धीरे परिपक्व हो रही है। और विज्ञान की पद्धति से मनुष्य का मन जब शिक्षित होता है, तब स्पष्ट, प्रतीयमान (अनुभूत ज्ञान) भाव उसे विशेष आकृष्ट करते हैं। अलौकिक वस्तु के प्रति उसकी आस्था कम होने लगती है।

(प्रसंगवश इस सन्दर्भ में भूतेशानन्दजी का एक अभिभाषण स्मरणीय है। ८ मई १९८७ को श्रीरामकृष्ण मठ, तमलुक में दिये गये अपने अभिभाषण में उन्होंने कहा था : ठाकुर तो दिखा गये हैं कि वे कुछ अतिमानवीय दैवी क्रिया कलाप करते नहीं। एक आदमी ठाकुर के पास आकर कहता है, सुना है, यहाँ परमहंसदेव औषधि देते हैं। ठाकुर सशंकित होकर कहते हैं, नहीं, यहाँ नहीं, वहाँ पंचवटी में। साधु से या भगवान से हमलोग इन वस्तुओं को ही चाहते हैं। मुँह से कहते हैं ज्ञान-भक्ति चाहते हैं—किन्तु वस्तुतः यह सब कितना चाहते हैं ? ऐसी स्थिति में ठाकुर हमलोगों के किस काम के हैं, यह बात विचारणीय है। हमलोग सामान्यतः जो चाहते हैं, ठाकुर के पास वह सब कुछ भी नहीं है। धन-दौलत नहीं है, बीमारी ठीक नहीं कर पाते हैं या करते नहीं हैं, मुकदमा जितवा देने, बाल-बच्चों को परीक्षा में पास करा देने, नौकरी पाने, बेटी का विवाह आदि सांसारिक कार्यों के लिए आशीर्वाद मांगने पर वे कहा करते थे, 'माँ जानती हैं, मैं कुछ नहीं जानता।' ऐसे जो ठाकुर हैं उनका अनुसरण कर हम क्या करेंगे ? इसी से आदमी जब देखता है कि उनके पास आने पर कोई सांसारिक लाभ होता नहीं, तब कहता है, 'धत् इतनी आशा लेकर यहीं आया, किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ।' कोई-कोई कहता है, "दीक्षा लेने के बाद से मेरे परिवार में आशा के प्रतिकूल घटनाएँ घटने लगी हैं, यह क्या दीक्षा के दोष से हो रही है ?" इसके उत्तर में कहूँगा : ठाकुर ने कहा है, भगवान के लिए ही भगवान को चाहूँगा। उनको उद्देश्य के रूप में चाहूँगा, उपाय के रूप में नहीं। वे यह देंगे, वह देंगे—इन सब बातों की आशा कर उन्हें नहीं चाहूँगा। किन्तु ऐसी मानसिकता लेकर ठाकुर के पास कितने लोग या हमलोग जाते हैं ? हमलोग जो चाहते हैं वह उनके पास पाते नहीं। फिर क्या करें ? एक ओर मुँह से 'ठाकुर-ठाकुर' कहते हैं और दूसरी ओर

दैवी चमत्कारी क्षमता से सम्पन्न व्यक्तियों के शरणापन्न होते हैं। मैं उनलोगों को दोष नहीं देता, केवल मनुष्यों की कामना-लालसा की बात कहता हूँ।

"एक बार एक जगह गया था। एक आदमी ने मुझसे पूछा, 'आप हाथ देखना जानते हैं?' मैंने कहा, 'नहीं।' 'जन्म कुंडली देखना जानते हैं?' 'नहीं।' 'दवा-दारू देना जानते हैं?' 'नहीं।' 'तो फिर आप जानते क्या हैं?' सोचा, सचमुच ही तो मैं जानता क्या हूँ? ऐसे लोगों की आशा-आकांक्षा पूरी करने योग्य वस्तुएँ तो मेरे पास कुछ भी नहीं हैं। तथापि श्रीरामकृष्ण इन लोगों को प्रिय लगते हैं। क्यों लगते हैं? एक कारण से लगते हैं। और वह है, ऐसे सरल आत्मभोला, सब के दुःख से दुःखी मनुष्य कितने मिलते हैं? जो सर्वदा ही त्याग-वैराग्य की बात कहते हैं, ईश्वर के अतिरिक्त जो और कुछ नहीं जानते, तथापि किसी की सन्तान की मृत्यु हो जाने पर उनके पास जाकर अपनी व्यथा-कथा कहने से. उनकी आँखें आँसुओं से गीली हो जाती हैं, इन्हीं ठाकुर को तो हमलोग चाहते हैं। जो हमलोगों के दुःख से दुःखी होते हैं, उदासीन होकर नहीं रहते, उनको ही तो हमलोग चाहते हैं। वे समस्त दुःख-विपदाओं से हमलोगों का एकबारगी उद्धार न भी कर पायें, किन्तु उनमें हमलोग एक ऐसे सहानुभूतिशील को पाते हैं जो हमलोगों के दुःख को समझते हैं।' [उद्बोधन, चैत्र १३९५, ९१ वर्ष, संख्या-३, पृ० १२५-२६]

देश :—स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव से सत्ययुग का आगमन हुआ है। सत्ययुग कहने से स्वामीजी का क्या तात्पर्य है! किन लक्षणों के आधार पर इस युग को सत्ययुग के रूप में रेखांकित करेंगे?

भूतेशानन्दजी : सत्ययुग—यह शब्द सबके मन को आकृष्ट करता है, आलोड़ित करता है। साथ ही हमलोगों के मन मे एक संशय भी दिखाई पड़ता है, यह सोचकर कि श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव से सत्ययुग का आरम्भ हुआ है। माना कि सत्ययुग आया है। किन्तु उसका प्रकाश कहाँ दिखाई पड़ता है? बात यह है कि सत्ययुग कहने से हमलोग एक ऐसे काल्पनिक युग की अवधारणा करते हैं जिस युग में कोई दोष नहीं, सब गुण ही होता है। ऐसा कोई युग कभी भी नहीं था। यह संसार सदा ही गुण-दोष का, अच्छे-बुरे का मिश्रित रूप रहा है। तो फिर स्वामीजी ने 'सत्ययुग' शब्द क्यों कहा? इसके उत्तर में कहूँगा कि मनुष्य जिस क्षण संसार की अच्छाई की ओर आकृष्ट होता है, बुराई से दूर रहना चाहता है, उस क्षण. अर्थात् उस समय उसकी जो मन की अवस्था होती है, उसे ही हमलोग सत्ययुग कहते हैं। उस युग का आविर्भाव व्यापक रूप से अथवा हठात् नहीं होता। धीरे-धीरे युग का परिवतन होता है। यह लोकदृष्टि से ओझल होता है। उस परिवर्तन का समय जब शुरू होता है, परिवर्तन का तात्पर्य है अच्छाई की ओर परिवर्तन, तब उसे ही सत्ययुग कहते हैं। इस सत्य-युग को परिपुष्ट होने में लम्बा समय लगता है। अभी उसका फल क्या-क्या हुआ है, उसका स्वरूप कैसा है, यह समझ में नहीं आएगा। यह दिखाई नहीं पड़ेगा। तथापि विचार कर देखने पर हम देख सकेंगे कि श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव के बाद से मनुष्य के भीतर की तन्द्रा टूटी है। एक नया पथ, जिसे हमलोग कल्याण का पथ कहते हैं, उस ओर चलने की प्रवृत्ति जगी है। और ध्रुवतारा की भाँति श्रीरामकृष्ण अपनी साधना और स्नेह के आलोक से हमलोगों को राह दिखाते ले चल रहे हैं। इसे हमलोग भली-भाँति समझ पा रहे हैं। ऐसे समय को ही स्वामीजी ने सत्ययुग कहा है। उन्होंने

इसी कल्याणोन्मुखी आरोहण की ओर संकेत किया है।

देश : शिव भाव से जीव-सेवा के सम्बन्ध में विवेकानन्द का जो आदर्श है, उस आदर्श को क्रियान्वित करने के लक्ष्य से मठ-मिशन क्या धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है? यदि दूर नहीं हो रहा है तो फिर अन्य पाँच संस्थाओं से श्रीरामकृष्ण संघ की भिन्नता कहाँ है? उसकी स्वतन्त्रता और विशिष्टता को हमलोग किस रूप में पहचान सकेंगे?

भूतेशानन्दजी : सेवा के आदर्श को जब हमलोग किसी एक उद्देश्य को सिद्धि के लिए हथियार के रूप में ग्रहण करते हैं, तब उसके भीतर एक कपटता रहती है। उस समय हमलोग किसी अभिप्रेत स्वार्थ को सिद्ध करने के उपाय के रूप में सेवा को ग्रहण करते हैं : किन्तु जिस सेवा का आदर्श श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द ने हमलोगों को दिया है, उसका प्रकृत रूप है मानव-प्रेम। मनुष्य रूपी जो ईश्वर है, उसके प्रति निःस्वार्थ प्रेम। श्रीरामकृष्ण संघ का जो त्याग है, उसकी मूल प्रेरणा यही प्रेम है। जो 'जीव को प्रेम करते हैं, वही ईश्वर की सेवा करते हैं।' हमलोग इस भाव को जीवन में कितना उतार सके हैं, यही सबसे बड़ी बात है। श्रीरामकृष्ण संघ शुरू से इस आदर्श को साकार करने की चेष्टा कर रहा है। कभी इससे दूर नहीं हुआ है। उसकी चेष्टा अबाध रही है।

अनेक संस्थाएँ सम्भवतः अपने कार्यों में सेवाधर्म को आदर्श के रूप में ग्रहण नहीं करतीं। संभवतः कोई संस्था नाम-यश की आकांक्षा से कार्य करती है या संभवतः मनुष्यों के प्रति उन संस्थाओं की स्वभाव सुलभ शुभाकांक्षा है। इसके द्वारा प्रेरित हो कार्य करती हैं। स्वामीजी जिसे सेवाधर्म कहते हैं, ठीक उसी भाव से सम्भवतः अनेक जगहों पर कार्य नहीं होते। सेवा के भीतर से मानव-प्रेम—यह भाव अनेक लोगों को आकृष्ट करता है। इससे जीवन में कल्याण के पथ पर चलने में अधिक सहायता मिलेगी।

देश : महाराज, आपने अनेक पश्चिमी देशों का परिभ्रमण किया है। वहाँ के लोगों के मन में रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा ने कैसा प्रभाव डाला है? इस भावधारा के प्रति उन लोगों में कितना झुकाव है और आपको यह कैसा लगा है!

भूतेशानन्दजी : पश्चिमी देशों का भ्रमण किया है, किन्तु मेरा घूमना बहुत सीमित रहा है। जैसे, अमेरिकनों के सम्बन्ध में कहावत है कि पन्द्रह दिन भारत का भ्रमण कर एक वृहदाकार पुस्तक लिख डालता है। मेरी वैसी यात्रा नहीं हुई। ठाकुर के कार्य से विदेश गया हूँ। वहाँ के भक्तों से सम्पर्क हुआ। और उन लोगों के पार्श्ववर्ती सामान्य लोगों को देखा। सामान्य लोगों की अपेक्षा भक्तों की संख्या बहुत अधिक है, ऐसी बात नहीं है। कुल मिलाकर सम्भवतः वे मुट्ठी भर होंगे। ये ही कुछ सामान्य लोग ठाकुर के भाव को सही रूप में ग्रहण करने की चेष्टा कर रहे हैं तथा इन्हीं भावों के द्वारा शान्ति प्राप्त करते हैं। बाहर के देशों में देखा है कि वहाँ के लोग खूब धनी एवं सम्पन्न हैं। उन लोगों के जीवन में सुख-सुविधा के उपकरणों की निस्सन्देह प्रचुरता है। किन्तु इन उपकरणों से उनके प्राणों की पिपासा नहीं मिटती। वे अपने जीवन को और अधिक सार्थक करना चाहते हैं। किन्तु किस प्रकार सार्थक करना होगा, इसे वे समझ नहीं पाते। लगता है, कम से कम उन देशों में जाने पर प्रतीत होता है कि ठाकुर-माँ-स्वामीजी के भाव उन लोगों को, उस दिशा में थोड़ी-सी हृदय की भूख मिटा पाते हैं। उस शान्ति का रहस्य वे जान पाते हैं।

देश : हमारे देश में इन दिनों जो समस्या प्रबल रूप से मस्तिष्क को आन्दोलित कर रहा है, वह है धार्मिक रूढ़िवादिता या कट्टरपंथता। विभिन्न धर्मों के कट्टरपंथी लोग किसी एक आवेगप्रवण विषय को लेकर देश के साधारण धर्मप्राण, धर्मभीरु लोगों को पागल कर दे रहे हैं। जिसकी अनिवार्य परिणति हो रही है—मारकाट, रक्तपात और मृत्यु। रूढ़िवादियों की दृष्टिभंगी और मानसिकता देश के सर्वांगीण कल्याण के क्षेत्र में अत्यन्त हानिकारक है। तथापि हमलोगों के इस महान देश में समस्त युगों के सर्वश्रेष्ठ समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण ने जन्म ग्रहण किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन और सन्देश समस्त धर्मों की मिलन-माला है। अक्सर हमलोगों को ऐसा लगता है कि धार्मिक कट्टरपंथीगण जब आपस में संघर्ष में लिप्त हों, तब रामकृष्ण मठ-मिशन यदि स्वतः प्रेरित हो उन लोगों के बीच श्रीरामकृष्ण का संदेश लेकर उपस्थित हों तो धर्म-सम्बन्धी अनेक समस्याओं का सरल समाधान हो सकता है। इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है ?

भूतेशानन्दजी : मनुष्य के अन्दर सदा ही एक संकीर्णता का मनोभाव कार्य करता रहता है। और इसी संकीर्णता के फलस्वरूप मनुष्य में धर्मान्धता आती है। श्रीरामकृष्ण ने इस संसार में प्रचलित विभिन्न धार्मिक मतों का सारतत्व उपलब्ध कर कहा है, चिन्तन-मनन कर कहा है कि इस धर्मान्धता के मूल में है मनुष्य की अज्ञानता। मनुष्य केवल अपने धर्म-मत में ही विश्वास करता है। इसी विश्वास को स्वामीजी ने अन्धविश्वास कहा था। और श्रीरामकृष्ण ने इसे हठधर्म कहा है। वचनामृत में उन्होंने कहा है. "यदि आन्तरिकता हो तो सभी धर्मों से ईश्वर मिल सकते हैं। वैष्णवों को भी मिलेंगे तथा शाक्तों, वेदान्तियों और ब्राह्मों को भी, मुसलमानों और ईसाइयों को भी। हृदय से चाहने पर सब को मिलेंगे। कोई-कोई झगड़ा कर बैठते हैं। वे कहते हैं कि हमारे श्रीकृष्ण को भजे बिना कुछ न बनेगा; या हमारी कालीमाता को भजे बिना कुछ न होगा; अथवा हमारे ईसाई धर्म को ग्रहण किये बिना कुछ न होगा।

"ऐसी बुद्धि का नाम हठधर्म है, अर्थात् मेरा ही धर्म ठीक है और बाकी सब का गलत। यह बुद्धि खराब है। ईश्वर के पास हम बहुत रास्तों से पहुँच सकते हैं।"

वस्तुतः मनुष्य के अन्धविश्वास के पीछे कोई भी तर्क नहीं होता है। जैसे कहा जाता है कि सभी मनुष्य पापी हैं। और उस पाप से मुक्ति पाने के लिए किसी व्यक्ति विशेष की शरण में जाने के अलावा उनके लिए कोई भी उपाय नहीं है। यह सिद्धान्त मनुष्य को अत्यन्त सामान्य उक्ति के द्वारा एक मार्ग दिखा देना चाहता है। किन्तु जब वह दूसरे देश के साथ, दूसरी जाति के साथ, दूसरे धर्मावलम्बियों के साथ विचार करता है तब वह समझ पाता है कि इस बात का कोई भी मूल्य नहीं है। इसीसे जिसे धर्मान्धता कहता हूँ उसकी उत्पत्ति अज्ञानता से होती है। श्रीरामकृष्ण ने अपनी साधना और उपदेशों के द्वारा इस अज्ञानता को दूर करने की काफी चेष्टा की है। उन्होंने स्वयं विभिन्न धर्मों की प्रणालियों को उपलब्धि की थी। प्रत्येक धार्मिक सिद्धांत के द्वारा उसी परम सत्य को उपलब्ध किया जाता है—इसे उन्होंने स्वयं देखा था। किसी धर्म के प्रति उन्हें अश्रद्धा नहीं थी। सर्वत्र फैले हुए सत्य को एवं उसके विभिन्न रूपों को उन्होंने देखा तथा उसे स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य के अपने-अपने मन में जो संकीर्णता है उसे दूर करने का मार्ग उसने पाया है। हमलोगों ने पाया है। श्रीरामकृष्ण के इस सर्वधर्मसमन्वय के उपदेश को जहाँ भी हम फैलाएँगे, वहीं मनुष्य का कल्याण होगा। किन्तु वह कल्याण एक व्यक्ति के

द्वारा या किसी एक विशेष सम्प्रदाय के द्वारा नहीं होगा। जब मनुष्य स्वाभाविक रूप से इस बात का अर्थात् श्रीरामकृष्ण के सन्देश की सत्यता को समझेंगे, तभी उसका कल्याण होगा। इसे वे सब कभी समझेंगे कि नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। क्योंकि कट्टरपंथी लोग सभी स्थानों में, सभी देशों में, सभी काल में रहते हैं। फिर इसके साथ ही इस अज्ञानता के विरुद्ध मनुष्य का संग्राम, ज्ञान-प्राप्ति के लिए बुराई के साथ अच्छाई का संग्राम—यह भी सभी स्थानों में होता रहता है और होता रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति, जो अच्छाई चाहता है, वह बुराई से मुक्त होना चाहता है। फिर, मेरे लिए जो कल्याण-कारी है, वह दूसरे के लिए भी कल्याणकारी है—यह बात स्वाभाविक रूप से ही उसके मन में प्रकट होती है। इसके लिए वह सतत प्रयास करेगा। अपने को लेकर ही सन्तुष्ट रहना मनुष्य के लिए उचित नहीं है। क्योंकि उसका एक समष्टि जीवन है। समष्टि जीवन का तात्पर्य किसी एक देश का नहीं। देशनिरपेक्ष समस्त मानव का समष्टि-जीवन। अपनी स्वार्थबुद्धि का परित्याग कर, सबके कल्याण में मेरा कल्याण है—इस बात को मनुष्य जितना ही समझ सकेगा, उतना ही वह इस सत्य को सबके सामने, अपने स्वयं के जीवन के द्वारा प्रतिष्ठित कर सकेगा एवं करना चाहेगा। तथापि, कट्टरवादिता की बात होती है, धर्मान्धता के विरुद्ध हमलोगों को स्वयं अपने को प्रबुद्ध करने की, समझाने की जरूरत है, निःसन्देह होने की जरूरत है। ऐसा नहीं होने पर क्या लाभ! जिस वस्तु के सम्बन्ध में मैं स्वयं पूर्ण-रूपेण निःसन्देह नहीं हूँ, उस पर मेरा अधिक बल नहीं रहता। मेरे कहने पर भी उस बात का अधिक मोल नहीं होता। इसलिए, सबके पास पहुँचा देना—इसकी जैसी आवश्यकता है उससे अधिक आवश्यक है उसे अपने निजी जीवन में रूपायित करना। धर्मान्धता को इसी प्रकार दूर करना होगा।

देश : स्वामी विवेकानन्द के महाप्रयाण के पश्चात् श्रीमाँ सारदा देवी ने संघजननी के रूप में जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण संघ का अपनी आध्यात्मिक आभा, जीवनादर्श और मातृस्नेह से लालन-पालन किया है, वह आश्चर्यजनक है। रामकृष्ण मठ-मिशन की इस विश्वव्यापी धर्मचेतना का उन्मेष करना और सेवाश्रयी कर्मधारा के पीछे श्रीमाँ की साधना और अवदान अपरिमेय है। कई लोगों का कहना है कि इस अवदान की तुलना में माँ के जीवन और सन्देश को जनसाधारण के निकट उस सघन रूप में नहीं पहुँचाया जा सका है। जो कुछ पहुँचाया गया है, वह है श्रीरामकृष्ण का सन्देश। यहाँ तक कि रामकृष्ण मठ के बहुत बाद श्रीमाँ के नाम से सारदा मठ स्थापित हुआ। किन्तु १९१४ ई० में अपने गुरुभ्राता स्वामी शिवानन्दजी को लिखित एक पत्र में स्वामीजी ने कहा था, "माँ का मठ पहले बनाना चाहिए। ... मेरे लिए माँ की कृपा पिता की कृपा से लाखों बार अधिक मूल्यवान है।" इस सम्बन्ध में यदि आप कुछ आलोक प्रदान करें।

भूतेशानन्द जी : बात यह है कि कोई एक आदर्श तभी फैलता है जब उस आदर्श को ग्रहण करने की योग्यता उस समाज में होती है। स्वामी जी की इच्छा थी कि पहले माताओं के लिए मठ बनाएँगे। किन्तु उस समय उन्होंने उसके अनुकूल क्षेत्र नहीं पाया। जिसके द्वारा करेंगे उसका साधन नहीं पाया। इतने दिनों बाद स्वामी जी की शुभ इच्छा फलवती हुई है। इच्छा तो हमलोगों को हमेशा ही रहती है। किन्तु उसे रूपायित होने में समय लगता है। उपयुक्त समय। विवेकानन्द की दृष्टि में भारतीय नारी का अन्तिम आदर्श थीं माँ। निवेदिता के विचार से भी "श्री श्री माँ नारीत्व के आदर्श के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की अन्तिम वाणी थीं।" स्वामीजी ने कहा था, "क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे

अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है ? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति का निरादर होता है। उस अनुपम शक्ति को भारत में पुनः जाग्रत करने के लिए माँ का जन्म हुआ है, और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से गार्गी और मैत्रेयी का जन्म संसार में होगा।" उन श्रीमाँ को समझने में लोगों को लम्बा समय लगा। अभी भी लगता है। शिवानन्दजी को ही तो स्वामीजी ने यह भी कहा था, "माँ के जीवन का विलक्षण महत्व तुमलोग अभी नहीं समझ सके हो—तुम में से एक भी नहीं, परन्तु धीरे-धीरे तुम जानोगे।" इसलिए, सर्वदा इच्छा रहने से ही उनका कार्य सिद्ध हो जाय, ऐसा नहीं होता है। यह समय सापेक्ष है।

देश : हिमालय की गोद में स्थित मायावती में मठ-मिशन का एक केन्द्र है, जो 'अद्वैत आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है। इस केन्द्र में श्रीरामकृष्ण का चित्रपट-प्रतिमा-मूर्त्ति-मन्दिर कुछ भी नहीं है। स्वामीजी की भावना और इच्छा के अनुसार यहाँ विशुद्ध निराकार अद्वैततत्व का साधन, अनुशीलन और विवेचन होता है। मठ मिशन के दूसरे केन्द्रों में आचरित धर्मानुष्ठान से मायावती की पृथकता बिल्कुल स्पष्ट है। प्रश्न यह है कि मठ-मिशन के दूसरे केन्द्रों में मूर्त्ति-मन्दिर-रहित अध्यात्म साधना को यह पद्धति क्यों नहीं है ? इस विषय में यदि कुछ कहें···· ।

भूतेशानन्दजी : स्वामीजी ने अद्वैत को सदैव साधना के क्षेत्र में उपयोगी नहीं कहा है। तथापि, इसे एक आदर्श पथ के रूप में बताया है। अद्वैत एक आदर्श है। इस आदर्श पर पहुँचने के लिए धीरे-धीरे अपने को तैयार करना पड़ता है। अद्वैत आश्रम की स्थापना करने के पीछे स्वामीजी का यह उद्देश्य नहीं था कि यहाँ सभी अद्वैत की साधना करेंगे। ऐसा करने के लिए स्वामीजी ने कहा भी नहीं। स्वामीजी ने कहा है कि जो लोग अद्वैतवाद की साधना करना चाहते हैं उनके लिए यहाँ एक अनुकूल क्षेत्र होगा। यहाँ प्रतिकूलता नहीं रहेगी। इसीसे वहाँ उन्होंने मूर्तिपूजा आदि का निषेध किया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अद्वैत आश्रम में जो लोग रहते हैं, वे सब के सब निराकार वादी हैं। ऐसा नहीं है। तथापि यदि कोई निराकारवादी हों तो वहाँ कोई उनकी प्रतिकूलता नहीं करेगा। इसीसे उस मठ का, मायावती के मठ का उन्होंने इस रूप में गठन किया था जिससे वहाँ किसी अद्वैतवादी की साधना की प्रतिकूलता न हो। और अद्वैतवाद, स्वामीजी ने भी कहा है कि सही-सही अद्वैतवाद की साधना करना सामान्य लोगों के लिए सम्भव नहीं है। फिर भी सामान्यतः यदि कोई करना चाहे, तो उसके अनुकूल जगह की जरूरत है। वहाँ उसका प्रतिरोध कोई नहीं करेगा। मायावती का आश्रम इसी प्रकार का एक आश्रम है।

देश : मठ-मिशन के वार्षिक प्रतिवेदनों और समाचारपत्रों से एक बात धीरे-धीरे समझ में आ रही है कि विगत कई वर्षों से जिस अनुपात में मठ-केन्द्र स्थापित हुए हैं, उसकी तुलना में मिशन केन्द्र की स्थापना की संख्या बिल्कुल नगण्य है। ऐसा क्यों होता है ? मिशन-केन्द्र के बिना रामकृष्ण-विवेकानन्द भावादर्श कैसे स्थापित हो सकेगा ?

भूतेशानन्दजी : देखो, मठ-मिशन के सम्बन्ध में सामान्य लोगों में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं। मठ-केन्द्र और मिशन-केन्द्र में कोई मूल अन्तर नहीं है। मूल अन्तर नहीं है, क्योंकि ठाकुर-माँ-स्वामीजी के जो आदर्श हैं, उन आदर्शों को अपने जीवन में उतारने के लिए ही ये दोनों केन्द्र हैं। मठ या मिशन के माध्यम से उन्हीं आदर्शों का प्रचार या प्रसार किया जाता है।

मुख्य रूप से देखने पर मठ-मिशन की यह

विशेषता है कि मठ वह स्थान है जहां पर रहने वालों ने ठाकुर को जीवन के समस्त रूपों में ग्रहण किया है। ईश्वरीय साधन-भजन और धर्माचरण मठ केन्द्र के अनुरूप हैं। दूसरी ओर धार्मिक अनुशासन को नहीं मानकर भी जो लोग लोकोपकारी कार्य करना चाहते हैं, उन लोगों के लिए मिशन-केन्द्र अनुकूल क्षेत्र है। इसमें सबको लिया जाता है। मठ के सम्पूर्ण संचालन का भार संन्यासी-साधुओं पर है या रहता है। मिशन-केन्द्र वैसा नहीं है। जो लोग संन्यासी नहीं हैं, जो हिन्दूधर्म में विश्वास नहीं करते—ऐसे सभी लोगों के लिए यह एक क्षेत्र है। मिशन का क्षेत्र इस दृष्टि से व्यापक है। तो फिर मठ की सार्थकता कहाँ है? जो लोग श्रीरामकृष्ण की भावधारा में अपना जीवन-गठन करना चाहते हैं उनलोगों के लिए मठ की सार्थकता है। दूसरी ओर मिशन की सार्थकता यह है कि यदि कोई श्रीरामकृष्ण को छोड़ भी दे, तो भी वह मिशन का सदस्य हो सकता है, उसके क्रियाकलापों से जुड़ सकता है।

तथापि, मिशन-केन्द्र की स्थापना कम नहीं हो रही है। वस्तुतः जहाँ के लोग जिस भाव में भावित होते हैं, वहाँ उनके प्रयास से ही संघ स्थापित होता है—चाहे वह मठ ही हो अथवा मिशन। इन दोनों में केवल विधान की दृष्टि से ही अन्तर है। मौलिक अन्तर रंचमात्र नहीं है।

देश : मठ या मिशन—इन दोनों केन्द्रों का लक्ष्य तो फिर एक ही है—सेवा!

भूतेशानन्द जी : बात सटीक नहीं हुई। सेवा को ही एकमात्र लक्ष्य नहीं कहूंगा।..... सेवा है, जीवन को एक विशेष आदर्श में ढालना है। सेवा हुई एक उपाय। यही एकमात्र उद्देश्य नहीं है। अक्सर हमलोगों को लगता है कि मठ का कार्य व्यापक होता है, मिशन का कार्य वैसा नहीं होता। यह भ्रान्त धारणा है। जहाँ मठ है, वहां लोग लोकोपकारी कार्य करते हैं। फिर जहां केवल लोकोपकारी कार्यों के लिए मिशन-केन्द्र की स्थापना हुई है, वहाँ धर्म को जीवन से अलग कर नहीं देखा जाता। इसीसे मठ-मिशन में उस दृष्टि से कोई भी अन्तर नहीं है।

देश : रामकृष्ण मठ-मिशन के कर्मप्रवाह के मुख्य वाहक एवं संचालक उसके सर्वत्यागी संन्यासी-वृन्द हैं। वे संघ के स्तम्भस्वरूप हैं। अक्सर हमलोग सुनते हैं कि मठ-मिशन के अति व्यापक कार्यकलापों की तुलना में संन्यासियों की संख्या बहुत कम है। इस कमी का कारण क्या है? तर्कवादी और वैज्ञानिक मानसिकतावाले युवकगण क्या त्याग के पथ पर आने को अब उत्साहित नहीं हो रहे हैं? अथवा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द का भावादर्श उन लोगों की चेतना को अब आलोड़ित नहीं कर पा रहा है?

भूतेशानन्दजी : यह जो कहते हो लोगों की कमी, उसका कारण है, सर्वत्याग किये बिना रामकृष्ण संघ में आकर कोई संन्यास नहीं ले सकता। लोगों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा हमलोग आदर्श से भ्रष्ट नहीं इस ओर हम हों। अधिक ध्यान देते हैं। इसी से हमलोगों के द्वारा किसी को वरण करना या रिक्रूटमेन्ट बहुत सीमित है। फलतः हमलोगों की संख्या अधिक बढ़ती नहीं। तथापि बिल्कुल नहीं बढ़ती है, ऐसा नहीं है। कम होने पर भी प्रति वर्ष संन्यासियों की संख्या बढ़ रही है। फिर भी हम लोगों के बढ़ते हुए कार्यों की तुलना में वह नगण्य है। इधर हमारे कार्यों के ऊपर लोगों की आस्था बढ़ रही है। फिर जिस साधन से सेवा करेंगे, उसके लिए धन भी बढ़ रहा है। इसके फलस्वरूप, जो कार्य पहले एक आदमी कर सकता था, उसी कार्य

के अभी कई गुना बढ़ जाने से दस आदमियों को मिलकर करना पड़ता है। यह बात स्वीकार करने योग्य नहीं है कि मांग की तुलना में हमलोगों के संन्यासियों की संख्या कम है। अभाव तो सर्वदा ही रहता है और सदैव रहेगा। तथापि निश्चय ही मठ-मिशन में योगदान करने को युवकगण उत्साहित हो रहे हैं। यदि हमलोग गणना करें तो देखेंगे कि हमलोगों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती रही है। किन्तु उस बढ़ने की गति, वृद्धि इतनी जल्दी नहीं होती जिसे लक्ष्य किया जा सके अथवा कार्य की तुलना में पर्याप्त हो।

देश : भारत का अन्यतम सबसे बड़ा अनाथ आश्रम अर्थात् रहड़ा में स्थित रामकृष्ण मिशन बालकाश्रम के संचालन का श्रेय इसी संघ को है। यहाँ श्रीरामकृष्ण वस्तुतः 'अनाथों के नाथ' हैं। इतना बड़ा एक कार्य प्रायः बिना हो-हल्ला के चल रहा है। प्रश्न यह है कि इस कार्य में देश के लोग आपको सहायता देते हैं क्या ? वे लोग किस प्रकार देते हैं ?

भूतेशानन्दजी : रहड़ा आश्रम सबसे बड़ा है या नहीं, मैं नहीं जानता। तथापि देश के लोगों के उदारतापूर्ण सहायता देने के कारण ही इतने अनाथों ने वहाँ आश्रय पाया है। और उनका प्रतिपालन हो रहा है। लोगों का सहानुभूति के बिना यह कार्य नहीं हो सकता। निश्चय ही, इसीसे विस्तार की तुलना में यह सहायता सम्भवतः यथेष्ट नहीं है। इन सात सौ अनाथों की सेवा करने से ही क्या देश का दुःख मिटेगा ! नहीं मिटेगा। इसीसे जो अभाव है उसकी तुलना में हमलोग बहुत कम ही कर पाते हैं। फिर इस कार्य में लोगों की सहानुभूति नहीं है, यह नहीं कहूँगा। प्रचुर सहानुभूति है। जो जिस प्रकार कर सकते हैं, उसी प्रकार की सहायता करते हैं। पहले हमलोग जहाँ संभवतः पाँच या सात लड़कों का लालन-पालन करते थे, वहाँ आज सात सौ लड़कों का पालन कर पा रहे हैं। अतएव, यह लोगों की सहानुभूति के कारण होता है। अन्य कोई कारण नहीं है। तथापि यह सहानुभूति, सारे भारत में फैले हुए हजारों अनाथों के दुःख दूर करने की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। कभी हम यह नहीं सोचते कि हमलोग दुःख दर्द दूर कर पाये हैं, या कभी पूर्णतया कर सकेंगे—ऐसा भी भरोसा नहीं करते। किन्तु, इस भाव को लोग ग्रहण करें। यह वस्तु सब में एक भाव का सृजन करे, आलोड़न उत्पन्न करे। इस विषय में सक्रिय सहयोग देने के लिए सभी जागरूक हों। रहड़ा आश्रम एक मॉडल इन्स्टीट्युशन (आदर्श संस्था) है। इसे देखकर और भी बहुत सारे लोग कार्य आरम्भ करेंगे—इसी की हमलोगों को आशा है। ऐसा आश्रम और भी उठ खड़ा हो।

देश : आप जानते हैं, फिर भी सविनय अवगत करा रहा हूँ, 'देश' पत्रिका अपने निजी वैशिष्ट्य से आज बंगला साहित्य और संस्कृति का अविच्छेद्य अंग हो गयी है। इस पत्रिका के प्रकाशन की उम्र छप्पन वर्ष है। 'देश' पत्रिका की तुलना में स्वामी विवेकानन्द द्वारा संस्थापित 'उद्बोधन' पत्रिका उम्र में बड़ी है। इस वर्ष इस पत्रिका ने गौरवोज्वल ९१ वें वर्ष में पदार्पण किया है। परन्तु यह दुःख की बात है कि अनवरत रूप से इतने दिनों तक प्रकाशित होते रहने का गौरव प्राप्त करने के बावजूद 'उद्बोधन' का वैसा व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं हुआ। स्वामीजी 'उद्बोधन' को घर-घर पहुँचा देना चाहते थे, सम्भव होने पर बिना मूल्य के भी। कई लोग कहते हैं कि रामकृष्ण मठ-मिशन आज तक 'उद्बोधन' को स्वामीजी की कल्पना के अनुसार बंगालियों के आध्यात्मिक जीवन का अविच्छेद्य अंग नहीं बना सके। ऐसा क्यों हुआ ! कोई विशेष बाधा या उद्यम

की कमी के कारण ऐसा हुआ ? इस सम्बन्ध में आपका मतामत ।

भूतेशानन्दजी : मुख्य बात यह है कि 'उद्‌बोधन' में जो सामग्री दी जाती है वह खाँटी सत्य रहती है । उसमें रस की चासनी भरकर उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास नहीं किया जाता । 'उद्‌बोधन' के माध्यम से, इसके द्वारा एक आदर्श का प्रचार करने का प्रयास किया जाता है । उस आदर्श को सही-सही समझने में लोगों को समय लगेगा । कोई भी वस्तु तभी लोकप्रिय या पॉपुलर होती है, जब वह जनसाधारण की रुचि के अनुरूप होती है । हम लोग 'उद्‌बोधन' को उस प्रकार दूसरों की रुचि के अनुकूल बनाकर गढ़ने की चेष्टा नहीं करते । स्वामीजी ने भी नहीं की । 'उद्‌बोधन' एक आदर्श का केवल वाहक है । वह इतने वर्षों से उसी आदर्श का वहन करता हुआ चल रहा है । उस आदर्श में तेज है, प्राण है । तथापि इस आदर्श को पत्रिका के माध्यम से अनेकानेक लोगों के निकट पहुँचा देने के लिए जिस शक्ति-सामर्थ्य की आवश्यकता है, स्वयं हमलोगों में उस शक्ति-सामर्थ्य का अभाव है । यह बात स्वीकार करूँगा । फिर भी 'उद्‌बोधन' के लोकप्रिय नहीं होने का कारण है विभिन्न रसों को परोसकर इसे लोगों की रुचि के अनुरूप नहीं बनाया जा सका है ।

देश : ठीक है । पोपुलैरिटी या जनप्रियता को छोड़ देने पर भी, इतने वर्षों से जो पत्रिका प्रकाशित होती आ रही है, वह पत्रिका हमलोगों के प्रयोजनार्थ धर्मजीवन का अंग क्यों नहीं हो सकी ? रामकृष्ण भावादर्श की प्रमुख पत्रिका होने के कारण यह एक विराट् भूमिका निभा सकती थी ! है कि नहीं !

भूतेशानन्दजी : देखो, हमलोग यदि 'उद्‌बोधन' नहीं कहकर ठाकुर के भावप्रचार का यन्त्र कहें, तो देखेंगे कि हमलोगों के रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का प्रवाह क्रमशः बढ़ रहा है । दिनानुदिन यह साहित्य आशातीत रूप से प्रसारित हो रहा है । इससे ज्ञात होता है कि इसके प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है । वह चाहे 'उद्‌बोधन' के नाम से ही हो या पत्रिका में प्रकाशित जो भाव-राशि है, उसके प्रति आकर्षण के कारण हो । पत्रिका एक उपाय है । इस पत्रिका में जो सारी रचनाएँ छपती हैं वे पत्रिका की अपेक्षा काफी दूर तक प्रसारित होती हैं । इसलिए भाव का प्रसार ही मुख्य बात है । पत्रिका का प्रसार मुख्य बात नहीं है ।

इस पत्रिका को घर-घर पहुँचा देने के लिए जिस प्रचार-कार्य की अपेक्षा है, वह प्रचार-कार्य हमलोग 'उद्‌बोधन' के लिए नहीं करते । हमलोग द्वार-द्वार जाकर इस पत्रिका को बेचने या इसके लिए ग्राहक बनाने का प्रयत्न नहीं करते । इस दृष्टिकोण से हम एक भाव का मूल्यांकन नहीं करेंगे । मूल्यांकन इस दृष्टिकोण से करेंगे कि इस आदर्श को ग्रहण करने की लोगों में कितनी उत्कंठा है । इस विषय में लोगों की आकांक्षा-उत्कंठा कई गुना बढ़ी है, यह हमलोग रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य के प्रसार के माध्यम से समझ सकते हैं । यह आश्चर्य का विषय है कि जब पुस्तक-मेला का आयोजन होता है तब हमलोगों की पुस्तकों की बिक्री सबसे अधिक होती है । इस ओर लोगों का इतना झुकाव है यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है । यह चाहे 'उद्‌बोधन' पत्रिका के द्वारा हो या उन लोगों के द्वारा प्रकाशित पुस्तकराशि के द्वारा हो । इसी से हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाता है ।

स्वामीजी ने कहा था कि 'उद्‌बोधन' को बिना मूल्य के ही वितरण करना होगा । यह हमलोग नहीं कर पाये । फिर बिना मूल्य लिए ही वितरण करना सदैव फलदायी भी नहीं होता । अक्सर देखा जाता है

है कि बिना मूल्य लिये किसी वस्तु के देने पर, उस वस्तु पर लोगों का अधिक विश्वास नहीं रहता। एक उदाहरण याद आ रहा है। विगत दिनों में 'शिशिर' नामक एक पत्रिका मात्र एक पैसा में बेची जाती थी। देखा जाता कि पत्रिका के निकलते ही कालेज स्ट्रीट के इलाके में ही उसकी सारी प्रतियाँ बिक गयीं। कौन लोग खरीदते थे? खरीदते थे जूतों के दुकानदार। जूतों को लपेटकर देने के लिए वे 'शिशिर' की सारी प्रतियाँ खरीद लेते। मात्र एक पैसा मूल्य रहने पर भी यह दशा! बिना मूल्य के देने पर क्या होगा, सोचो! इसी से केवल बिना पैसा लेकर ही लोगों में इस पत्रिका का प्रसार नहीं होगा। सम्भवतः इसका मूल्यबोध कम हो जाएगा। 'उद्बोधन' पर हमलोग बहुत अधिक जोर नहीं देते। दे पाते नहीं। अन्य दिशाओं में हमलोगों के कार्य का क्षेत्र बहुत बढ़ गया है। इससे भी बड़ी बात यह है कि यह पत्रिका केवलमात्र बंग्ला भाषा-भाषियों के लिए है। फिर बंग्ला भाषा-भाषियों में भी जो श्रीरामकृष्ण-भावानुरागी हैं, उनलोगों के लिए है। फलतः इसके प्रचार-प्रसार का क्षेत्र बहुत सीमित है। 'उद्बोधन' के सम्बन्ध में इन सब बातों का हमें ध्यान में रखना होगा।

देश : कई लोग कहते हैं कि संघ और संगठन के विशालकाय हो जाने से एक अहंकार-मण्डल का निर्माण हो जाता है। श्रीरामकृष्ण संघ क्या उसी मण्डल में धीरे-धीरे आबद्ध हो गया है? अहंकार का घेरा क्या इसके चारों ओर निर्मित हो गया है?

भूतेशानन्दजी : हमलोग खुद इस विषय में बीच-बीच में सोचते हैं। और जिससे यह अहं बुद्धि नहीं जगे इसके लिए स्वयं को सावधान करते हैं। प्रयास करते हैं। किसी भी साधन के लिए मनुष्य को जी-जान से प्रयास करना पड़ता है। किन्तु सिद्धि उसी परिमाण में होगी, यह मान लेना ठीक नहीं। हमलोग साधक हैं। हम सिद्ध नहीं हैं।

देश : अनेक व्यक्ति आध्यात्मिक पिपासा और संशय लेकर मठ-मिशन के विभिन्न केन्द्रों में दौड़े चले आते हैं। उनमें से अनेक यह दोषारोपण करते हैं कि दौड़े चले आने पर भी वे लोग वांछित साधु-संग-लाभ नहीं कर पाते, स्वभाव में सुधार और गुरुमुखी साधन-भजन के उपाय उन्हें उपलब्ध नहीं होते। मन का रिक्त-स्थान भर नहीं पाता। इन लोगों के दोषारोपण का क्या कारण है?

भूतेशानन्दजी : इसके दो कारण हैं। एक कारण तो यह है कि हमलोगों के शास्त्र में है—जो आकांक्षी (अभिलाषी) नहीं है, उसे देना नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि वह इसका मूल्यांकन नहीं कर सकेगा। इसी से, मठ-मिशन में जो आते हैं वे सब के सब धर्मपिपासु होकर ही आते हैं, ऐसी बात नहीं है। कई लोग मेला देखने भी आते हैं। अतएव, लोगों को दौड़े चले आते देखने से ही नहीं होगा। देखना यह होगा कि उनमें भाव का प्रसार कितना हुआ है। दूसरा कारण यह है कि, यहाँ आने से ही सभी धर्म-वचन सुनना चाहते हैं, ऐसा भी नहीं है। अनेक ऐसे लोग आते हैं जो घूम-फिरकर लौट जाते हैं। संभवतः यहाँ बैठकर मैं धर्म-विषयक बातों का विवेचन कर रहा हूं। वे आकर देखते हैं कि एक आदमी क्या सब बक्-बक् करता है। वे अधिक देर रुकते नहीं। सुनते नहीं। चले जाते हैं। ठाकुर का भाव लेकर वे सब आते नहीं। नाम सुना है—बेलुड़ मठ। अतएव यहाँ आकर अनेकानेक दृश्य देखकर घर लौट जाते हैं। ये लोग बेलुड़ मठ के आदर्श को जानते नहीं तथा उस पिपासा को लेकर आते नहीं।

बाइबिल में यह बात लिखी हुई है कि अनेक लोग आएँगे, किन्तु उनमें से कम लोग ही गृहीत होंगे। धर्म की बात सदा से इसी प्रकार की है। सब

के सब एक दम से चले ही जाते हैं, ऐसी बात नहीं है। फिर भी एक ऐसे स्थान के रहने की आवश्यकता है जहाँ थोड़े से लोगों की भी प्यास मिट सके। कठोपनिषद् में कहा गया है :

"श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥"

अर्थात् "उनके (ईश्वर एवं आत्मतत्व के) विषय में चर्चा अनेक लोगों को सुनने को भी नहीं मिलती, बहुत से लोग सुनकर भी उन्हें नहीं समझ सकते। उनके (ईश्वर या आत्मतत्व के) सम्बन्ध में वर्णन करनेवाले वक्ता भी दुर्लभ हैं। उन (ईश्वर या आत्मतत्व) को प्राप्त करने वाले भी एकाध ही होते हैं। फिर उन्हें जाननेवाला व्यक्ति (ज्ञाता) भी परम दुर्लभ है।" अतएव केवल लोगों की भीड़ देखने से काम नहीं चलेगा। सिनेमा देखनेवाले लोगों की जैसी भीड़ होगी, वैसी भीड़ क्या एक धर्म-कक्षा या धर्मग्रन्थ के पाठ में होगी ? वैसी नहीं होगी। जिससे सहज ही रस मिल सकता है, उस वस्तु के प्रति लोगों में अधिक आकर्षण होता है। सात्विक रस उसे ही कहते हैं जिसे प्रयत्न करके प्राप्त किया जा सकता है। इसीसे यहाँ कम लोग रहेंगे ही। सदैव ऐसा ही रहेगा। अधिक लोग एक साथ नहीं होंगे। थोड़े-से लोग धैर्यपूर्वक धर्मतत्व के विषय में सुनने आएँगे। फिर उनमें भी सक्रियतापूर्वक इस तत्व को ग्रहण करनेवाले लोग और भी कम होंगे। परन्तु ये ही लोग धर्मतत्व को बचाकर रखते हैं। वे मुट्ठीभर लोग हैं। धर्म को वे ही दो-चार व्यक्ति बचाकर रखते हैं, जिन्होंने धर्म को अपने जीवन के व्रत के रूप में ग्रहण किया है। अब हमलोगों का यह कर्तव्य है कि जो स्वभावतः ईश्वर या आत्मतत्व को जानना चाहते हैं, उनके विषय में बातें सुनना चाहते हैं, उन लोगों को इसके लिए सुयोग प्रस्तुत कर दें। जहाँ तक कर सकें। यही लक्ष्य है।

देश : जो सचमुच ही अध्यात्म-रस के पिपासु हैं, वे भीड़ में खो जाते हैं कि नहीं ?

भूतेशानन्दजी : नहीं। केवल वे ही खो जाते हैं, जो दृश्य देखकर घर चले जाते हैं। यथार्थ धर्म पिपासार्त प्राणी नहीं खोते हैं।

देश : इन पिपासुओं की अवस्था तब क्या स्थिर होती है ? क्या वे साधुसंग प्राप्त करेंगे ?

भूतेशानन्दजी : देखो, हमलोगों की कठिनाई यह है कि किसे जाकर कहूँगा, अरे, तुम ठाकुर की बात सुनो। जिसे कहा, उसने सम्भवतः सुना नहीं। सम्भवतः उसका अभी भी समय नहीं हुआ है। ठाकुर जब उपदेश देते थे तब वे क्या किसी बाजार में उपदेश देते थे। कुछ मुट्ठीभर लोग उनके (ठाकुर के) जीवन और सन्देश से आकृष्ट हुए थे। उनकी संख्या कितनी कम है ! कितनी कम ! अतएव, खूब बाजार लगेगा (भीड़ होगी), बहुत सारे लोग आएँगे—यह ठाकुर भी नहीं चाहते थे। इससे आदर्श क्षीण हो जाता है। उसे डाइल्युटेड (अल्प या सूक्ष्म) हो जाना होगा। केवल कुछ लोग अपने जीवन में आदर्श को पकड़े रखते हैं। उन्हीं कुछ लोगों में ही वह स्रोत प्रबल बना रहेगा। ऐसा नहीं होने पर यह एक 'मास मूवमेन्ट' (जन-आन्दोलन) जैसा होता है, वैसा हो जाएगा। और उसका स्थायित्व नहीं रहेगा। श्रीरामकृष्ण कहते थे, क्षणिक आवेश। आवेश के खत्म होते ही बहुत लोग चले जाते हैं। हमलोग तो देखते हैं कि इस देश में कितने ही धर्माचार्य या पैगम्बर आते हैं, जाते हैं। भारतवर्ष धर्म का देश है। यहाँ धर्माचार्यों का अभाव नहीं है। वे आते हैं, चले जाते हैं। लोग कुछ दिनों के

लिए उनकी ओर आकृष्ट होते हैं। किन्तु शाश्वत मूल्य के रूप में उनका मूल्यांकन नहीं होता। समय एक भयंकर परीक्षा की वस्तु है। समय में हर वस्तु की परीक्षा होती है। जिसमे मूल्य है, वह अधिक स्थायी होता है। और साधुसग का अर्थ केवल साधु के निकट सदेह उपस्थित होना नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है साधु के आदर्श को ग्रहण करना।

['उद्‌बोधन' की पूर्वोल्लिखित संख्या में साधु-संग के विषय में प्रेसिडेन्ट महाराज ने और अधिक विस्तारपूर्वक अपना अभिमत व्यक्त किया है। उन्होंनेकहाहै,"साधुसंग का अर्थ साधुके साथ सम्मिलित वास करना नहीं, साधु का आदर्श ग्रहण करना है। जिनके निकट जाने पर भगवान के सम्बन्ध में मन में चेतना जगे, मन में सत्-विचार आवे, उनको ही साधु कहते हैं। प्रसगवश एक घटना याद आती है। एक नवागंतुक व्यक्ति उद्‌बोधन में स्वामी सारदानन्दजी महाराज के समीप गये हैं। कहते हैं, साधु-संग करने आया हूँ। सारदानन्द महाराज ने कहा, बच्चा, ठाकुर जब दक्षिणेश्वर में थे तब कालो बाड़ी के रसोइया-नौकर चौबीसों घन्टे उनके साथ रहते, पास-पड़ोस के लोग भी प्रतिदिन प्राय: आया-जाया करते। वर्ष के वर्ष इसी प्रकार चलते रहे। किन्तु उनलोगों के जीवन में कोई बदलाव हुआ हो ऐसा तो सुना नहीं जाता। साधु के जीवन से जो शिक्षा मिलती है उसे ग्रहण करने के लिए एक प्रवृत्ति होनी चाहिए। यह नहीं होने पर वह साधु-संग किसी काम का नहीं होता।" पृ० १२७]

देश : श्री माँ ने एक बार कहा था, श्रीरामकृष्ण का आश्रय जो एक बार ग्रहण करेगा, जो उनकी शरण में जाएगा उसे कभी मोटे भोजन-वसन की कमी नहीं होगी। प्रश्न यह है कि इतना बड़ा आश्वासन पाकर ही क्या प्रत्येक वर्ष अनेक लोग श्रीरामकृष्ण-मंत्र में दीक्षित होते हैं? अथवा आध्यात्मिक अभाव का बोध मनुष्य को श्रीरामकृष्ण की ओर उन्मुख कर रहा है? इनमें कौन सा सही है। आप रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष हैं और दीक्षामंत्र देनेवाले गुरु भी। इसीसे आपसे मैंने यह प्रश्न किया है।

भूतेशानन्दजी : बात थोड़ी उल्टी हो गयी। ठाकुर ने कहा था, जो लोग यहाँ आएँगे उनका यह अन्तिम जन्म होगा। अर्थात् जिनके भीतर श्रीरामकृष्ण द्वारा दिखाया गया आध्यात्मिक भाव जाग्रत होगा वे मुक्त हो जाएँगे। और श्रीमां ने ठाकुर के नाम पर संसार का परित्याग कर जो साधु हुए हैं उनके सम्बन्ध में ठाकुर से यह कहकर प्रार्थना की थी, "तुम्हारे नाम पर अपना सब कुछ त्यागकर मेरे बच्चे थोड़े से अन्न के लिए भटकते फिरेंगे, यह मुझसे देखा नहीं जायगा। मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम्हारे नाम पर जो निकलेंगे, उन्हें साधारण खाने-पहनने का अभाव न हो। वे सभी तुम्हें और तुम्हारे उपदेशों तथा भावों को लेकर एक साथ रहेंगे, और सांसारिक दु:खों से जर्जरित मनुष्य उनके पास आकर तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे।" उन्हीं माँ के आशीर्वाद से हमलोगों को साधारण खाने-पहनने का अभाव कभी नहीं होता। कभी नहीं होता।

देश : यह तो आपलोगों की बात हुई। परन्तु जो संसारी, सामान्य गृहस्थजन दीक्षा लेते हैं, उनका क्या दृष्टिकोण है? वे क्यों आते हैं?

भूतेशानन्दजी : वे लोग अपने दैहिक अभावों को मिटाने के उद्देश्य से नहीं आते। आत्मिक अभाव दूर करने के लिए आते हैं। दैहिक अभाव दूर होंगे—सम्भवत: कोई-कोई ऐसी कल्पना करता है। किन्तु ऐसा होता नहीं। दीक्षा लेने से निर्धन धनी होगा और जो धनी व्यक्ति है वह और अधिक धनी होगा –ऐसा सोचना गलत है। निर्धन और

धना—ये दोनों ही वस्तुतः मन की दरिद्रता मिटाने के लिए भगवान को चाहते हैं। शान्ति मिलेगी—इसी लालसा से यहाँ सभी आते हैं। वही जो माँ ने ठाकुर से कहा था : "तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे।"—उसी शान्ति की आशा से तापतप्त मनुष्य श्रीरामकृष्ण के पास दौड़े चले आते हैं। और किसी कुछ के लिए नहीं।....

बातचीत यहीं समाप्त हो गयी। प्रेसिडेन्ट महाराज ने थोड़ी देर चुप रहकर स्वगत-कथन की भाँति कहा, ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) के भावों को कार्य-रूप में परिणत करने में डेढ़ हजार वर्ष लगेंगे। हमलोगों के इतना अधीर होने से काम नहीं चलेगा। उस समय मठ का प्राङ्गण दर्शनार्थियों और भक्तों के समागम से भर गया था।

●

(कृतज्ञता : स्वामी नित्यमुक्तानन्द, स्वामी भुवनेश्वरानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द एवं अमरेश चन्द्र भट्टाचार्य।)

भारतवर्ष के सभी अनर्थों की जड़ है जनसाधारण की गरीबी। पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे पशु हैं, उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीब देवता हैं। इसीलिए हमारे यहाँ के गरीबों को ऊँचा उठाना अपेक्षाकृत सहज है। अपने निम्नवर्ग के लोगों के प्रति हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है—उनको शिक्षा देना, उन्हें सिखाना कि इस संसार में तुम भी मनुष्य हो, तुम लोग भी प्रयत्न करने पर अपनी सब प्रकार उन्नति कर सकते हो। अभी वे लोग यह भाव खो बैठे हैं। पुरोहिती शक्ति और विदेशी विजेतागण सदियों से उन्हें कुचलते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप भारत के गरीब बेचारे यह तक भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। उनमें विचार पैदा करना होगा। उनके चारों ओर दुनिया में क्या हो रहा है, इस सम्बन्ध में उनकी आँख खोल देनी होंगी; बस फिर वे अपनी मुक्ति स्वयं सिद्ध कर लेंगे। प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक पुरुष और प्रत्यक स्त्री को अपनी मुक्ति स्वयं सिद्ध करनी पड़ेगी। उनमें विचार पैदा कर दो—बस, उन्हें उसी एक सहायता की जरूरत है, शेष सब कुछ इसके फलस्वरूप आप ही हो जायगा।

—स्वामी विवेकानन्द

२१ अगस्त : तुलसी जयंती

भक्त शिरोमणि महात्मा तुलसीदास

—डॉ० रामशंकर सिंह

मोहग्रस्त जर्जर समाज में धर्म, नैतिकता, भक्ति एवं ज्ञान आदि का प्रकाश फैलाने वाले भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास का अपना जीवन स्वयं अंधकार से ढका हुआ है। आधुनिक कवियों के विपरीत उन्होंने अपने जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, माता-पिता, गृहस्थ जीवन आदि के विषय में स्पष्टतः कहीं नहीं लिखा। प्रसंगवश उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र स्फुट रूप से जो उक्तियां मिल जाती हैं अथवा उनके समकालीनों ने इनके सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उनके आधार पर ही हमें कवि का प्रामाणिक या अप्रामाणिक जीवन प्रस्तुत करने के लिए विवश होना पड़ता है। वास्तव में तुलसी का शोधपरक जीवन-वृत्त प्रस्तुत करना यहां हमारा उद्देश्य नहीं है।

तुलसीकालीन समाज पर दृष्टिपात करें तो यह प्रतीत होता है कि समाज की अवस्था बड़ी दयनीय थी। इस युग में संकीर्ण मनोवृत्ति एवं धर्म की कट्टरता से प्रभावित मुसलमान शासक निरन्तर हिंदुओं पर अत्याचार कर रहे थे। विदेशी आक्रमणों का क्रम जारी था। पर वीरगाथाकालीन युद्ध का वातावरण लगभग समाप्त हो चुका था, क्योंकि विदेशियों से टक्कर लेने की शक्ति का ह्रास होता जा रहा था। वातावरण में शान्ति का आभास होता था किन्तु यह शांति उनके पराक्रम से प्राप्त शान्ति का प्रतीक न होकर उनकी पराजित मनोवृत्ति से उत्पन्न शान्ति थी जो शान्ति से अधिक, अशान्ति का पर्याय थी। धार्मिक परिस्थितियाँ भी सन्तोषजनक नहीं थीं। बलात् धर्म परिवर्तन हो रहे थे। हिंदू धर्म भी अनेक सम्प्रदायों में विभाजित था। वैष्णव, शैव, शाक्त, स्मार्त, नाथ, सिद्ध आदि एक-दूसरे के कट्टर विरोधी थे और एक-दूसरे को समाप्त करने के लिए हिंसा पर उतारू थे। ऐसे समय में एक ऐसे सन्त के आगमन की प्रतीक्षा थी, जो धार्मिक समन्वय करता। सन्त तुलसीदास ने शिव और राम में भेद भावना का खंडन कर शैव-वैष्णव का समन्वय किया—

सिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर सपनेहु मोहि न भावा॥

उस समय ब्रह्म के दो रूप—निर्गुण और सगुण को लेकर बड़ा विवाद था। निराकार ब्रह्म को मानने वाले सगुण ब्रह्म का खंडन करते थे और सगुण ब्रह्म को मानने वालों का विचार था कि निराकार ब्रह्म चिंतन का विषय तो हो सकता है, मनन का विषय हो जाता है लेकिन उपासना का विषय नहीं, क्योंकि उपासना में उपासक-उपास्य की स्थिति आवश्यक है। यदि उपासक के लिए उपास्य केवल चिंतन का विषय है तो वह अपनी भक्ति किसको निवेदित करे क्योंकि भक्ति के लिए कोई आधार चाहिए। तुलसीदास ने इन दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए कहा कि—वास्तव में ब्रह्म के

निर्गुण एवं सगुण रूप क्रमशः उसकी सूक्ष्म एवं स्थूल दशा के परिचायक हैं। दोनों में मूलतः कोई तात्विक अन्तर नहीं है।

दार्शनिक क्षेत्र में तुलसी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान ज्ञान और भक्ति दोनों द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का विधान है। तुलसी की मान्यता है कि ज्ञानी ज्ञान के द्वारा साधना करके और भक्त अपनी भक्ति करके मुक्ति पा सकता है। उनका स्पष्ट कथन है—

ग्यानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

किंतु ज्ञान का मार्ग बहुत कठिन है। उस पर चलना तलवार की धार पर चलना है। तुलसी ने ज्ञान-मार्ग मोक्ष पाने का साधन, ज्ञानी-साधकों के लिए तथा भक्ति-मार्ग उसे पाने का साधन, भक्त, सामान्य जन के लिए बताया। उन्होंने ज्ञान को दीपक कहा है जो विषय-वासनाओं के झोंके से बुझ सकता है तथा भक्ति चिंतामणि है जो स्वतः प्रकाशित होता है और उस पर विषय-वासनाओं का कोई प्रभाव नहीं। ज्ञान पुरुषवाची है, इस कारण ज्ञानी का अहंकारी होना स्वाभाविक है। भक्ति पुरुषवाची न होने से उसमें (भक्त में) अहकार की संभावना बहुत कम होती है। पुरुषवाची ज्ञानी का माया की ओर आकर्षण सहज है तथा भक्ति को धारण करने वाले भक्त का माया के प्रति आकर्षण संभव नहीं, क्योंकि नारी नारी के रूप पर मोहित नहीं होती। 'मानस' का 'ज्ञान-दीप' तथा 'भक्ति-चिंतामणि' प्रसंग बहुत ही मनोरम है।

लोक संग्रह की भावना

तुलसी का काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है। लोकमंगल के कारण ही उन्होंने काव्य की रचना की है जिसके प्रायः सभी पात्र आदर्श मंडित हैं। वास्तव में उस युग में आदर्श की बड़ी आवश्यकता थी। पराजित मनोवृत्ति वाले हिंदुओं को एक ऐसे काव्य नायक की आवश्यकता थी जिसमें वे अपना आदर्श देखते, जो उन्हें पराजित स्थिति में भी टूटने से बचाता। तुलसी के राम, सीता, भरत, दशरथ, हनुमान आदि ने यही किया। सीता के द्वारा समाज में पतिव्रता का जो रूप तुलसी ने स्थापित किया, वह दुर्लभ है। राजा दशरथ प्राण त्याग देते हैं, पर वचन नहीं तोड़ते। सौतिया डाह स्वाभाविक है, लेकिन कौशल्या राम से कहती हैं कि यदि वन जाने की आज्ञा तुम्हारे पिता ने दी है, तो माता के नाते मैं कहती हूँ कि वन मत जाओ, किंतु यह आज्ञा यदि माता कैकेयी और पिता दशरथ ने दी है तो तुम्हारे लिए वन सैकड़ों अयोध्या के समान है। पतनोन्मुखी समाज में राम कथा के माध्यम से चेतना प्रदान करने वाले तुलसी को समाज ने क्या दिया? बचपन में दर-दर की ठोकरें, अपमान, प्रताड़ना और निर्धनता का घोर अभिशाप। माता-पिता ने उन्हें जन्म देते ही छोड़ दिया। उन्हें शायद मालूम नहीं था कि तुलसी के कारण ही उनका नाम भी चिर स्थायी हो जाएगा। अपनी दीन-अवस्था का हृदय स्पर्शी वर्णन करते हुए महात्मा तुलसीदास ने लिखा है—

माता-पिता जग जाइ तज्यौ,
विधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई।

तुलसीदास को भी समाज ने अनेकानेक यंत्रणाएँ दीं किन्तु उन्होंने इसके विपरीत कटुता को मधुरता में बदलकर 'रामचरितमानस' तथा अन्य महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ दिए जो जन-जन के लिए मंगलकारी हैं, जिनमें जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष का मंत्र छिपा हुआ है, जो असत्य पर सत्य की विजय का उद्घोषण करते हैं और जो कटुता को मधुरता, मृदुलता से जीतने का संदेश देते हैं।

युग परिवर्तन की प्रक्रिया के फलस्वरूप चाहे कितना ही घोर कलियुग आ जाए, व्यायसायिक युग की चाहे कितनी ही मोटी पर्तें सम्पूर्ण विश्व को आक्रान्त कर ले, तुलसी-निंदक भारत में ही नहीं चाहे विश्व के कोने-कोने में फैल जाएं, पर तुलसी की कीर्ति-पताका सदा-सदा फहराती रहेगी। उनकी परम पावन जयन्ती पर उन्हें शतशः प्रणाम।

(हिन्दुस्तान, पटना से साभार)

●

बोध-कथा

रूप और गुण

विलक्षण प्रतिभा के धनी चाणक्य स्वयं कुरूप थे। चन्द्रगुप्त मौर्य को एक रोज मजाक सूझा और उन्होंने कहा, 'प्रधानमंत्री जी, क्या ही अच्छा होता, अगर आप गुणवान होने के साथ-साथ रूपवान भी होते।'

चाणक्य की बजाय महारानी ने ही उत्तर दिया, 'महाराज, रूप तो मृगतृष्णा है। आदमी की पूजा उसके रूप से नहीं, बल्कि गुण और बुद्धि से होती है।'

'आप रूपवती होकर भी ऐसी बातें कहती हैं? राजा ने सवाल किया, 'क्या ऐसा कोई उदाहरण है जहाँ गुण के सामने रूप की कोई अहमियत न हो?'

'बहुतेरे उदाहरण भरे पड़े हुए हैं, महाराज!' चाणक्य ने उत्तर दिया, 'आप पहले ठंढा पानी पीकर शांत हो लें, फिर बातें करेंगे।' उन्होंने तुरत पानी के दो गिलास बारी-बारी से राजा की ओर बढ़ा दिये :

'महाराज, पहले गिलास में सोने के घड़े का पानी था और दूसरे में मिट्टी के घड़े का। कृपाकर आप बतायें कि किस घड़े का पानी आपको अच्छा लगा।' पानी पी चुकने पर चाणक्य ने पूछा।

राजा ने जवाब दिया, 'मिट्टी के घड़े का पानी शीतल एवं सुस्वादु था। उसे पीकर मैं तृप्त हो गया। मगर सोने के घड़े का पानी तो पीने लायक था ही नहीं। लेकिन, चूँकि पहले मुझे वही गिलास थमाया गया था, अतः न चाहते हुए भी पीना पड़ा।'

महारानी ने हंसते हुए कहा, 'महाराज! हमारे प्रधानमंत्री ने बुद्धिचातुर्य से आपके सवाल का जवाब दे दिया। दूर से ही चमचमाने वाले सोने के घड़े की खूबसूरती देखते ही बनती है, मगर वह घड़ा भला किस काम का जिसका पानी पीने लायक हो ही नहीं। दूसरी तरफ, मिट्टी का घड़ा देखने में तो कुरूप है, मगर उसमें बहुत बड़ा गुण छिपा है। उसका शीतल-सुस्वादु जल पीकर मन तृप्त हो जाता है। अब आप ही बताइये, रूप बड़ा है या गुण एवं बुद्धि?'

विज्ञान और मानवीय मूल्य (४)

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज
उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन
अनुवादक : डॉ० सुरेशचन्द्र शर्मा

५ शिक्षा का लक्ष्य आध्यात्मिक विकास

अत: हमें अपनी शिक्षा में यह विचार लाना है कि एक सुशिक्षित व्यक्ति वह है जो थोड़ा-सा भी आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित हो गया है, जिसने थोड़ा सा भी अन्तर्निहित दैवी स्फुलिंग को अभिव्यक्त कर दिया है। इसके द्वारा व्यक्ति के जीवन और कार्य में तथा व्यक्ति के मानवीय सम्बन्धों में कितनी प्रचण्ड मूल्योन्मुखता आ जायेगी। ऐसा एक व्यक्ति यदि एक गाँव में एक स्वास्थ्य कर्मी अथवा एक प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए तो वह पुरुष या स्त्री वहाँ स्वस्थ सामाजिक परिवर्तन के लिए एक बल होगा, वह पुरुष या स्त्री वहाँ सम्पूर्ण मानवीय धरातल को उद्भासित कर देगा। आज यह नहीं हो रहा है, आज दी जाने वाली शिक्षा सामाजिक चेतना की कर्मठता को नहीं बढ़ाती। हमारे विकास कार्यक्रमों पर व्यय की जा रही ये सभी विपुल धन राशियाँ १/१० वाँ लाभ भी उत्पन्न नहीं करतीं। बहुत सा तो अपव्यय हो जाता है, क्योंकि इस कार्य में संलग्न मनुष्य उपयुक्त नहीं है। हमारी शिक्षा में, हमारे दृष्टिकोण में कुछ न कुछ अनुचित बात है, हमने मानवीय मूल्य ग्रहण नहीं किये हैं, भीतर से मानवीय मूल्यों को उन्मीलित करना तथा उनको दूसरों में संचरित करना नहीं सीखा है। इसलिए, भारत में तकनीकी जन-शक्ति में हमारा उच्च संख्या सूचक वैभव होते हुए भी, सामाजिक परिणाम अत्यन्त तुच्छ है : अब से, आगे इस ओर ध्यान देना है। हम लोगों को अधिक अच्छे, अधिक सुखी बनाना चाहते हैं जैसा कि पाश्चात्य एवं कुछ अन्य देशों ने उपलब्ध कर लिया है। आओ, हम आध्यात्मिक विकास के इन प्रारंभिक सोपानों को प्राप्त करने हेतु संघर्ष करें, उसके उपरान्त अपनी-अपनी विकास की गति के अनुसार उच्च आध्यात्मिक विकासों की ओर अग्रसर हों। यह प्राथमिक विकास है जिसकी आज हमें, हमारे देशवासियों के लिए आवश्यकता है, मानवीय स्थितियों के प्रति मानवीय दृष्टि से प्रत्युत्तर देने की क्षमता।

जब आप किसी व्यक्ति को विपदा में देखते हैं, उचित विचार आपके मन में तुरन्त आना चाहिए : उस स्त्री या पुरुष के लिए मैं क्या कर सकता हूं, वह अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ नहीं है। अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसकी सहायता करने के लिए मैं यहाँ हूँ।

जब तक व्यक्ति में थोड़ा सा आध्यात्मिक विकास न हो, यह दृष्टिकोण नहीं आ सकता। धर्म की यही वैज्ञानिक परिभाषा है। इसके दृष्टिकोण से प्रत्येक मनुष्य में प्रचण्ड शक्तियां छिपी हुई हैं। हमें उनको उन्मीलित करना है, उनको अभिव्यक्त

करना है। वह शिक्षा श्रेष्ठतम है जो आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित करती है तथा शक्तियों के इन उच्च और उच्चतर आयाम को अभिव्यक्त करने में सहायता करती है—शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति। चालू शिक्षा केवल प्रथम दो को अभिव्यक्त करने में सहायता करती है। तीसरी का विकास नहीं हुआ है। दूसरा विकास, बौद्धिक विकास हो गया है यद्यपि अधिकतर वह तुच्छ है। परिणाम है अधिकाधिक स्वार्थपरता, अधिक स्व केन्द्रियता, अधिक शोषण, यह व्यक्तिगत और सामाजिक मानव जीवन को प्रदूषित कर रहा है। अतः आध्यात्मिक विकास के विज्ञान का यह विषय मानवीय मूल्यों के उन्मीलन के उपफल सहित, भौतिक विज्ञान की प्रगति के साथ महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रत्येक मूल्य जैसा, कि मैंने पहले कहा, मानव व्यक्तित्व के गहन आयाम से आता है। केवल इन्द्रिय स्तर से शोषण के अतिरिक्त कोई भी मूल्य नहीं आ सकता। आपको पता लगाना है, आप अपनी समझ के लिए अध्ययन कर सकते हैं, हमारे व्यक्तित्व के इंद्रिय स्तर से हमें क्या प्राप्त होता है; कोई भी मूल्य नहीं। मूल्य कुछ गहनतर स्तर से आता है। वह करने की शक्ति, उचित अनुचित का निर्णय केवल गहनतर स्तर से हो आता है। श्री रामकृष्ण अपनी एक बोध कथा में मूल्यों के आक्रमण पर एक उदाहरण देते हैं। एक पिता ने घर पर बाजार से दो आम लाया, उसके दो बच्चे थे। बड़े लड़के के लिए उसने एक आम दिया तथा छोटे लड़के के लिए दूसरा आम दिया। बड़ा लड़का, तुरन्त ही कमरे में गया, द्वार बन्द किया, आम खाया, मुँह पोंछा और फिर आंगन में आ गया। छोटे को भी आम मिला, बहुत खुश हुआ और अपने साथियों को याद करते हुए आंगन में गया तथा उन सभी के साथ मिलकर आम खाया। अब यहाँ चेतना के विभिन्न स्तरों से प्रकट हुई दो प्रकार की क्रियाएँ हैं। पहले वाला आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित नहीं हुआ, वह केवल अपना ही इन्द्रिय समूह का माँगों को समझता है। वह किसी दूसरे के लिए नहीं सोच सका। दूसरा वाला आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित हो गया, वह अपनी जैविक सीमा से परे विकसित हो गया है। वह अन्यों को भी आम बाँटना चाहता है। अब आप सभी मानव कार्यों में यह "मूल्योंन्मुखी" कार्य तथा "मूल्य निषेधी" कार्य का अन्तर देख सकते हैं। अतः विज्ञान और मानव मूल्यों का विषय विज्ञान के कार्यक्षेत्र तथा विस्तार भौतिक विज्ञान से मानव विज्ञान-मानव, प्रकृति की गहनता में विस्तृत करने से प्राप्त होता है। ये दोनों विज्ञान साथ-साथ चलने चाहिए। भौतिक विज्ञान की आवश्यकता हमें मानवता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चाहिये जिन्हें श्री रामकृष्ण "प्राणीसुख" कहते हैं। परन्तु मानव जीवन का गुणात्मक सुधार दूसरे से आता है। परन्तु भारतीय परम्परा की यह निष्ठा है कि मानव जैसे उच्च विकसित प्राणी के लिए दूसरा अध्यात्म विद्या मानव प्रकृति की गहनता का विज्ञान अधिक महत्व का है। अतः श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं :— अध्यात्म विद्या विद्यानाम् सभी विद्याओं में मैं अध्यात्म विद्या हूँ।

यह विज्ञान इतना सर्वोत्तम क्यों हैं। क्योंकि आपके पास सभी भौतिक विज्ञान हो सकते हैं, परन्तु अपने पड़ोसियों के साथ, अपनी पत्नी के साथ, अपने पति के साथ, सम्पूर्ण समाज के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एवं स्वयं की आत्मशक्ति के लिए, आपकी सहायता के लिए आपके पास यह दूसरा विज्ञान होना चाहिए। ये मूल्य मात्र तकनीकी विकासों से या अपने घर पर अधिकाधिक गजट लाकर प्राप्त नहीं होते। ये केवल मानव प्रकृति के अन्तर में गहन आध्यात्मिक

स्तर से आते हैं। दिवंगत जीवशास्त्री सर जूलियन हक्सले के शब्दों में [Evolution ater Darwin, खण्ड—३, पृष्ठ २५९]

"एक बार हम यथार्थतः विश्वास करलें ..... कि मानव को नियति अधिक मानवों के लिए महानतर परिपूर्णता तथा मानव समाजों द्वारा पूर्णतर उपलब्धियों को संभव बनाना है तो प्रचलित अर्थ में उपयोगिता अप्रधान हो जाती है। भौतिक उत्पादन की मात्रा अवश्य ही प्राथमिक मानव आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के रूप में आवश्यक है—परन्तु केवल एक निश्चित अंश तक। एक निश्चित संख्या से अधिक कैलोरीज या काकटेल या टीवी सेट या कपड़े धुलाई की मशीन व्यक्ति के लिए न केवल अनावश्यक है अपितु बुरी है। भौतिक उत्पादन की मात्रा आगे के लक्ष्य के लिए एक साधन है, स्वयं में एक लक्ष्य नहीं।"

परिमाण से गुणवत्ता की श्रेष्ठता का यहाँ विचार पश्चिम में आज अधिकाधिक वैज्ञानिकों द्वारा अधिकाधिक स्वीकृत किया जा रहा है। भारत में, हमारी अभिरुचि इस बात में है कि हमारा सम्पूर्ण वैज्ञानिक समुदाय इस सत्य को स्वीकार करे तथा मानव की अन्तःप्रकृति के विज्ञान तथा गहनता से मूल्यों को उन्मीलित करने की पद्धति के महत्व को महसूस करे। केवल बौद्धिक विकास भर पर्याप्त नहीं है। हृदय भी विकसित होना चाहिए। अनुभव करने की क्षमता आनी चाहिए। तभी केवल वह बौद्धिक विकास समाज के लिए उपयोगी होगा। वर्तमान में यह नहीं है। यही कारण है कि दुर्बल समुदायों के विकास के लिए निर्धारित धनराशि उन तक नहीं पहुँचती।

पंजाब नेशनल बैंक प्रबन्धकों के बीच, दिल्ली में मैं प्रबन्ध में मानवीय मूल्य पर बोला, तब मैंने यह प्रश्न रखा : भारत में हमारे पास अद्भुत जनशक्ति है, तेजस्वी मस्तिष्क एवम् प्रचुर प्राकृतिक संसाधन हैं, और फिर भी हम अविकसित राष्ट्र हैं, जबकि जापान के पास प्राकृतिक संसाधन नहीं है, हाँ उनके स्त्री और पुरुष बहुत बुद्धिमान हैं और जापान विकास में इतना ऊँचा है। ऐसा क्यों है। क्योंकि जापान का मानव यहाँ हमारा अपेक्षा आध्यात्मिक दृष्टि से कुछ अधिक विकसित है। वे दूसरों के लिए अनुभव करते हैं, वे अपने देश के लिए अनुभव करते हैं, वे कठोर परिश्रम करते हैं। यदि भारत में, हमने अपने शिक्षित वर्ग में मानवीय मूल्यों का आत्मसात कर लिया होता तो हम सबसे ऊपर होते। हमारे पास प्रचुर प्राकृतिक संसाधन हैं, किन्तु हममें अन्य लोगों में प्रेम करने की, दूसरों को प्रेम करने तथा उनकी सेवा करने की क्षमता नहीं है। "मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ" वाला दृष्टिकोण हममें से अधिकांश में स्वाभाविक नहीं है। आप यहाँ पास में सचिवालय में जाते हैं, बहुत कम यह कहने को चिन्ता करेंगे, 'आपका स्वागत है, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ।' वहाँ स्त्री पुरुष आपकी चिन्ता करने के लिए हैं, आपकी सेवा के लिए ही हैं, परन्तु अधिकतर करते नहीं हैं, सर्वत्र यही वृतान्त है, यह मानवोन्मुखता, स्वकेन्द्रीयता से परे उठने की क्षमता का अभाव है, वे अपने आनुवांशिक केन्द्रित अहं की कैद में आबद्ध होकर जीते एवं काय करत हैं। वे धर्म के विज्ञान की एक कर्मठ आध्यात्मिकता के रूप में प्रबल उत्प्रेरणा प्राप्त करने में विफल रहे हैं, जो अनुष्ठान, सिद्धान्त और मत में केन्द्रित अकर्मण्य धर्मपरायणता से सुशोभित सांसारिकता से सर्वथा भिन्न है। मनुष्य के आध्यात्मिक विकास से कर्मठ आध्यात्मिकता आती है।

अन्तर्बोध

दीन, धर्म और भारतीयता

—एस० वसीरुद्दीन

(भूतपूर्व कुलपति, डॉ० बी० आर० अम्बेडकर खुला विश्वविद्यालय एवं राजदूत, कतार)

इण्डियैनिज्म, भारतीयता और अब हिन्दुत्व समानार्थी शब्द हैं। यह लोगों के सोच पर निर्भर है। यह सोच उस हर व्यक्ति के लिए संभव है जिसके पास खुला मन है तथा जो भारतीय संस्कृति को गहराई से समझता है। फिर ये शब्द उसके लिए पर्यायवाची हैं। परन्तु जब इन शब्दों का प्रयोग घृणित स्वार्थों से प्रेरित होकर राजनैतिक उद्देश्यों के लिए एक सकीर्ण संदर्भ में किया जाता है तो उसमें आकाश पाताल का अन्तर आ जाता है।

भारत में परेशानी की जड़ यह है कि संविधान की संस्तुति के अनुसार पारिभाषिक अर्थ में राज्य विचार और कार्य में धर्म निरपेक्ष होगा। यद्यपि यह एक उत्तम उद्देश्य है; परन्तु इस कारण संस्कृति और समाज की भूमिका का हनन हो जाता है। आज लगभग १००० वर्षों से भारत में रहते आ रहे मुसलमानों के मन में हिन्दुत्व के प्रति नकारात्मक सोच नहीं आना चाहिये। लगभग वही बात ईसाई और सिखों पर लागू हो सकती है। इस स्थिति से निपटने का सबसे अच्छा तरीका है—'हिन्दुत्व', भारतीयपन या आपको अच्छा लगे तो उसका संस्कृत पर्याय 'भारतीयता' जिसका किसी भी दृष्टि से देखने पर अर्थ होता है—संस्कृति वैशिष्ट्य एवम् भारत की ऐतिहासिक विरासत, को समझना है। व्यावहारिक दृष्टि से इसका अर्थ होना चाहिये अभिवादन के प्रकार जैसे नमस्कार, नाम के पहले 'श्री या श्रीमती' का सम्बोधन अथवा तमिल भाषा में 'थिरु' और उसी प्रकार कसी उर्दू या हिन्दी भाषी के लिए 'साहेब' तथा 'जी'।

सही तरीके से देखा जाय तो इस्लाम एक मजहब नहीं अपितु धर्म है जिसमें सर्वशक्तिमान के प्रति समर्पण किया जाता है। इस्लाम में जन्मने वाला बच्चा परमात्मा के प्राकृतिक नियम के अनुसार ही शरीर धारण करता है। उसका न कोई आदि है और न अन्त; क्योंकि इस्लाम का अर्थ होता है—ईश्वर का अन्तर्यामित्व जो मनुष्य की जीवन नाड़ी (शहरग) से भी अधिक निकट है। उसी प्रकार सनातन धर्म भारत की चिरन्तन प्राचीन परम्परा का द्योतक है जो प्रमुख रूप से व्यापक हिन्दूधर्म के उदात्त पक्षों को नियंत्रित करता है। बुद्ध का धर्मपद भी उससे भिन्न नहीं है। यदि भिन्नता है तो केवल यह कि उसकी व्यवस्था और उसके विस्तार के मूल में गौतम बुद्ध हैं।

हिन्दुत्व की छत्रछाया में इस्लामी दीन (नैतिक विधान) एवम् हिन्दूधर्म (सदाचार) साथ-साथ चल सकते हैं; क्योंकि वे मत या मजहब नहीं अपितु व्यक्तिगत और सामाजिक सदाचार को नियंत्रित करने वाले सार्वभौमिक आधार हैं। परन्तु हुआ क्या है कि एक राजनैतिक दल ने स्वविवेक से

हिन्दुत्व को अपना मुख्य आधार बना लिया है; परन्तु इस कारण हिन्दुत्व संकीर्ण धरातल पर नहीं उतरा है। इस्लामी दीन का सार है—सर्वशक्तिमान के अधीन रहकर अथवा ईश्वर या नैतिक विधान के प्रति निष्ठावान रहकर ईमानदार बनना। उसी प्रकार हिन्दूधर्म का सार भी धर्म अर्थात् सदाचार का पालन करना है। यदि कोई हिन्दुत्व, इण्डिक्वैनिज्म या भारतीयता को समझने का प्रयास करे तो पता चलेगा कि इनका अर्थ है—भारतीयों की जीवन-पद्धति न कि उपासना के रूप में किये जाने वाले रीतिरिवाजों का विवरण।

उसी प्रकार दीन को यदि इस्लाम का अनिवार्य अंग मान लिया जाय, जिसके अनुसार एक मानव स्वयं को परमेश्वर के प्रति समर्पित करते हुए प्रकृति के विधान एवम् आत्मसंयम से बरतता है तो 'दीन' और 'धर्म' में कोई भी विरोध नहीं हो सकता।

भारतीय जनता पार्टी सत्ता में आये या न आये, हिन्दुत्व एक सर्वस्पर्शी व्यापक अवधारणा है जो भविष्य में अधिकाधिक पल्लवित होती हुई भारत में गहरी जड़ जमा लेगी। अतः यह समय की माँग है कि प्रबुद्ध मुसलमान हिन्दुत्व को किसी काल्पनिक भय की दृष्टि से न देखते हुए उसे हजारों वर्ष से चली आ रही एक प्राचीन परम्परा के रूप में देखें जिसके अन्तर्गत १२०० वर्ष से भी अधिक पुरानी भारतीय और इस्लामी प्रथाएँ सुचारु रूप से चल सकें।

'खान साहेब' जैसा सम्बोधन, 'अदब अर्ज' के रूप में अभिवादन हिन्दुत्व या भारतीयकरण या भारतीयता के विरुद्ध नहीं माना जाना चाहिये; क्योंकि ताजमहल, बीजापुर का गोल गुम्बज, आगरा के निकट फतहपुर सीकरी सभी भारतीय विरासत के अंग हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ९५ करोड़ भारतीयों में से १३ करोड़ मुसलमान भी हिन्दुत्व के अभिन्न अंग हैं, उनके नाम चाहे संस्कृत परम्परा के हों या अरबी मूल के, वह अशोक हो या अकबर, एक फातिमा हो या पद्मा। ये विभेद मात्र सतही हैं, मानव का अस्तित्व हिन्दुत्व के अन्तर्गत पूरी तरह सुरक्षित है।

१७ करोड़ जनसंख्या वाला विश्व का सबसे बड़ा मुस्लिम बहुल देश इण्डोनेशिया रामायण और महाभारत को यदि अपनी सांस्कृतिक विरासत का उद्गम मान सकता है तो कोई कारण नहीं कि भारत में बसे १३ करोड़ मुसलमानों को हिन्दुत्व को अपनी यथोचित सांस्कृतिक विरासत मानने में कुछ हिचक हो।

मनोहर जोशी के मुकदमे से सम्बंधित उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद से हिन्दुत्व को गंभीरता से लिया जा रहा है जिसमें कहा गया है कि हिन्दुत्व का सम्बंध हिन्दू उपासना पद्धति या जीवन पद्धति से न होकर व्यापक अर्थ में भारत की सांस्कृतिक विरासत से है। हठधर्मिता से जब तक कोई इसकी परिभाषा को संकीर्ण नहीं बना देता तब तक इसका सम्बन्ध मात्र हिन्दू उपासना पद्धति या हिन्दू जीवन पद्धति से नहीं जोड़ा जा सकता।

कुरान में स्पष्ट रूप से अन्य उपासना विधियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है : 'तुम्हारे लिये तुम्हारी उपासना विधि और मेरे लिये मेरी उपासना विधि और हम दोनों को ही ईश्वर की प्राप्ति होगी और तब वे (ईश्वर) बतलायेंगे कि क्या सही है और क्या गलत। इससे पता चलता है कि उपासना विधि के सम्बन्ध में कुरान में लचीलापन है, उसमें विविध उपासना विधियों के साथ-साथ चलते रहने को स्थान प्राप्त है तथा उनके औचित्य का निर्णय केवल ईश्वर के अधीन है और इस कारण उपासना पद्धति में किसी प्रकार का आग्रह नहीं होना चाहिये।

उसी प्रकार हिन्दुत्व से प्राप्त 'सर्वधर्म समभाव' की भारतीय अवधारणा का अर्थ है कि सभी धर्म (पंथ) समान रूप से सम्माननीय हैं। यह भय कि हिन्दुत्व के कारण मुसलमानों की सांस्कृति पहचान खतरे में पड़ जायगी निराधार है; क्योंकि इस सम्बन्ध में व्यक्ति को स्वयं के जीवन को उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत सत्य की नई चेतना में विकसित करने का प्रयास करना है। अब सब देश की सर्वोच्च न्यायपालिका ने ही हिन्दुत्व की इतनी व्यापक व्याख्या प्रस्तुत कर दी है तो व्यक्ति को उस निर्णय का न केवल सम्मान करना चाहिये, अपितु यह प्रयास भी करना चाहिए कि इस धारणा को और भी अधिक व्यापक कैसे बनाया जाय ताकि भारतीय संस्कृति और सनद की सभी धारायें उसमें समा सकें।

एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि 'भारतीयता' तो हिन्दुत्व के निहितार्थों से बच निकलने का एक भाषाई तरीका है; परन्तु जिनको हिन्दुत्व पर आपत्ति है उनको भारतीयता पर भी मानसिक दुराग्रह हो सकता है।

शरिया के अनुमोदन के बिना ही बाबरी मस्जिद स्थान परिवर्तन विवाद का पटाक्षेप हो गया अन्यथा मुसलमानों के लिए अपनी सदियों पुरानी कड़वाहट जो मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा अपने मजहब के प्रचार के लिए मस्जिद खड़ी करने से आई थी, को दूर करने का एक अच्छा अवसर हो सकता था। स्वेच्छा से मस्जिद के स्थानान्तरण द्वारा मुसलमानों को न केवल व्यथित बहुसंख्यक हिन्दू समाज की सद्भावना प्राप्त हुई होती बल्कि भीषण रक्तपात एवं दो समुदायों की बीच भावावेदना से भी बचा जा सकता था।

किन्तु कुछ मुसलमानों के अपने ही भय और अविश्वास के कारण मुस्लिम समाज को बिना किसी प्रकार की सद्भावना दिये मस्जिद तो चली ही गई और छोड़ गई दोनों ओर केवल कटुता और प्रतिरोधिता की दुर्गन्ध। भारत की सीमा से पार दूर देश की एक विदेशी संस्कृति को अपने मजहब का अंग मानना, जो नहीं है, इस्लाम की अत्यन्त अदूर दृष्टि है।

१७ करोड़ की जनसंख्या वाले विश्व के सबसे बड़े इस्लामी देश इण्डोनेशिया में जहाँ ९० प्रतिशत जनसंख्या मुसलमान है, रामायण और महाभारत के चित्र कार्यालयों में लगे हुए हैं, विष्णु और गणेश की प्रतिमाएँ रास्ते के चौराहों पर लगी हैं तथा शिव और पार्वती जैसे देव-देवियों को तराशते हुए मुसलमान १००० वर्ष से हिन्दू पूजापद्धति और परम्परा में पले होने को अपनी हिन्दुत्व चेतना का परिचय दे रहे हैं।

भारत में बार-बार होने वाले साम्प्रदायिक दंगों के कई कारण बताये जाते हैं। परन्तु इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि भारत की बहुसंख्यक जनता के मन में यह भाव समाया हुआ है कि हम पर विदेशी संस्कृति थोपी गई है तथा हमारे पवित्र मन्दिरों को ढहाया गया है। इस सम्बन्ध में मुस्लिम अल्पसंख्यकों को भी इन ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति स्वीकारोक्तिपर्ण सहानुभूति रखनी चाहिए न कि उसके विपरीत अनावश्यक टीका टिप्पणी करें या अनजाने में या तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करते हुए भावना को दबायें। यद्यपि सदियोंपूर्व जो कुछ हुआ उसके लिए वर्तमान पीढ़ी उत्तरदायी नहीं है, परन्तु अतीत की स्मृति कराते हुए शीर्षस्थ नेताओं को हिन्दू संस्कृति की उदारता और सहिष्णुता का अहसास तो अवश्य ही कराया जा सकता है।

बहुत-सी गलतफहमियों का मूल कारण भाषाई है, क्योंकि संस्कृत मुसलमानों से तथा अरबी हिन्दुओं

से नितान्त भिन्न है। परन्तु इन भाषाओं में निबद्ध धार्मिक मंत्र जो गलतफहमी पैदा कर सकते हैं, उनके अनुवाद यदि भारत की प्रचलित भाषाओं में उपलब्ध करा दिये जायँ, तब लोगों को पता लगेगा कि वास्तव में वे भाषा विशेष द्वारा की जाने वाली परमेश्वर की आराधना के विविध मार्ग हैं; अतः किसी भी मार्ग के प्रति वैर भाव रखने की आवश्यकता नहीं है।

इस सम्बन्ध में दूर संचार माध्यमों की भूमिका निर्णायक है। भारत में दूर दर्शन और आकाशवाणी नौकरशाही नियंत्रण तथा धर्मनिरपेक्षता के सम्बन्ध में निराधार भय और आशंकाओं के कारण अपनी सामर्थ्य को नहीं समझ पाये हैं और इस कारण इस खाई को पाटने तथा धर्म के सकारात्मक पक्ष को प्रसारित करने में विफल हुए हैं। अधिक-से-अधिक कहा जाय तो श्रव्य दृश्य माध्यम उदासीन रहा है। उदासीन रहना तथा बहुसंख्यक हिन्दू त्यौहारों के साथ ही अन्य विविध मतों के मूल्यों, आदर्शों एवं विशेषताओं तथा मुस्लिम, सिख, पारसी, जैन, ईसाई आदि सभी समुदायों के त्यौहारों को सकारात्मक एवं सहायक रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रसारित करना एक ही बात नहीं है। दर्शकों में सोच और समझ जागृत करने का यही तरीका है जिससे वे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु सद्भाव निर्मित करने में सहायक हो सकें। अतः हम हिन्दुत्व का हौआ बनाकर होहल्ला न मचायें बल्कि भारतीय विरासत को भारत में रहने वाले सभी लोगों तक ले जाने की उसकी सकारात्मक भूमिका एवं सांस्कृतिक परम्परा को समझने का प्रयास करें।

(२६ मई १९९६ के अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' से साभार ग्रहीत एवं डॉ० सुरेशचंद्र शर्मा, प्राध्यापक कृषि महाविद्यालय, ग्वालियर द्वारा अनूदित।)

हिन्दुओं को अपना धर्म छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु उन्हें चाहिए कि धर्म को एक उचित मर्यादा के भीतर सीमित रखें और समाज को उन्नतिशील होने के लिए स्वाधीनता दे दें। भारत के सभी समाज सुधारकों ने पुरोहितों के अत्याचारों और अवनति का उत्तरदायित्व धर्म के मत्थे मढ़ने की भयंकर भूल की और एक अभेद्य गढ़ को ढहाने का प्रयत्न किया। नतीजा क्या हुआ? असफलता! बुद्धदेव से लेकर राममोहन राय तक सबने जाति-भेद को धर्म का एक अंग माना और जाति-भेद के साथ ही धर्म पर भी पूरा आघात किया और असफल रहे। पुरोहितगण चाहे कुछ भी बकें, वर्ण-व्यवस्था केवल एक सामाजिक विधान ही है, जिसका काम हो चुका, अब तो वह भारतीय वायु-मण्डल में दुर्गन्ध फैलाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करती। यह तभी हटेगी, जब लोगों को उनका खोया हुआ सामाजिक व्यक्तित्व पुनः प्राप्त हो जाय। इस देश (अमेरिका) में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक 'मनुष्य' समझता है। भारत में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि वह समाज का एक दास है। और उन्नति का एकमात्र सहायक स्वाधीनता है। उसके अभाव में अवनति अवश्यम्भावी है।

स्वामी विवेकानन्द

देवलोक

—स्वामी अपूर्वानन्द

अनुवादक : स्वामी ज्ञानातीतानन्द

पंचदश परिच्छेद

अनेक प्रकार के असंयमों के फलस्वरूप १९२४ ई० के मार्च महीने के प्रारम्भ में महापुरुषजी धीरे-धीरे शय्याशायी हो गये। सर्दी ज्वर १०२/२ डिग्री पर्यन्त उठा एवं ज्वर कम नहीं होता। पहले तो उन्होंने ध्यान नहीं दिया—दैनिक कार्य सब चलाते जा रहे थे, केवल खाना-पीना बन्द। तब बेलुड़ में कोई अच्छा डाक्टर नहीं था। कलकत्ता से डाक्टर बुलाने के लिए उन्होंने मना किया था। चौथे दिन मठ के वृद्ध साधुओं के समवेत अनुरोध से वे डाक्टर को दिखाने को राजी हुए। डाक्टर श्यामापद बाबू को बुलाया गया। उन्होंने परीक्षा करके कहा: 'केवल इनफ्लूयेंजा ही नहीं, साथ में ब्रोंकाइटिस भी है।' एवं उसी के अनुरूप औषध और पथ्यादि का निर्देश किया। किन्तु ज्वर कम नहीं हो रहा था, एव ज्वर बढ़कर १०४ डिग्री तक होने लगा। सर्दी, खासी, छाती में दर्द एवं दुर्बलता बढ़ती जा रही थी, फिर भी घर में शौचादि करने को वे राजी नहीं थे। कहा था: 'नहीं, घर में ठाकुर-देवता की छवि है, मैं स्नान घर में जाऊँगा।' मुझको पकड़कर वे स्नान घर जाते। बाद में जब चलने की शक्ति एकदम खत्म हो गई तब सभी के अनुरोध से घर में ही मिट्टी के बर्तन में शौचादि करने लगे। मैं साथ-ही-साथ उसको साफ करके चारों ओर गंगाजल छींट देता। उनकी गंगाभक्ति गहन थी। उनके घर में सर्वदा गंगाजल रखा रहता। वे प्रतिदिन सवेरे एक चुल्लू गंगाजल पान करते, सर्वत्र गंगाजल छींट देते एवं सवेरे-सध्या गंगा-दर्शन और प्रणाम करते। वे विश्वास करते कि गंगा की वायु जितनी दूर तक जाती है, उतनी दूर तक का स्थान पवित्र हो जाता है।

ठाकुर सेवा के प्रसंगमें महापुरुषजी

चौदह दिन लगातार ज्वर-भोग करके वे बहुत दुर्बल हो गये थे, तथापि उन्होंने एक दिन के लिए भी भक्त दर्शन बन्द नहीं किया एवं दैनिक काम काज बातचीत जैसा बोलना होता सब बोलते थे। प्रथम पथ्य करने के दिन डाक्टर ने उनके लिए सावूदाना का भात तथा उबली तरकारी का झोल के पथ्य की व्यवस्था की थी। इस पथ्य को बनाने के लिए एक सेवक नियुक्त हुआ, एवं उसी दिन से उनके लिए अलग सिद्ध और झोल-भात बनाने की ध्यवस्था हुई। बारहों महीने वे वही खाते। ठाकुर का प्रसाद उनके लिए सभी लाया जाता, वे एक अंगुल डुबा कर सभी को भक्तिपूर्ण जंभ से छूते थे।

उसीसे ठाकुर का भोग ठीक बना है कि नहीं वे समझ जाते एवं भोग में किसी प्रकार की त्रुटि होने से खूब असन्तुष्ट होते। किसी दिन कहते आज पायस जल गया है, प्रभाकर को बुलाओ।' प्रभाकर के आकर हाथ जोड़कर खड़े होते ही वे कहते:

'प्रभाकर, 'आज पायस जल गया है। यह जला पायस ठाकुर को भोग क्यों दिया? इस प्रकार भोग नष्ट करना ठीक नहीं हुआ, ऐसा फिर मत करना।' प्रभाकर हाथ जोड़कर कहता : 'नहीं, बाबा, और नहीं करूंगा।' पाचक ब्राह्मण के चले जाने पर उन्होंने मुझको कहा; 'देखो, इसीलिए मैं ठाकुर के भोग का प्रसाद थोड़ा-थोड़ा मुख में देकर देखता हूँ, ठाकुर को ठीक भोग देना हुआ कि नहीं। हमलोगों के ठाकुर जीवन्त हैं, यहाँ बैठे हैं, वे सब कुछ ग्रहण करते हैं। मुख में देते ही समझ लेता हूँ कि ठाकुर ने खाया है कि नहीं। मैं उनका बच्चा हूं, यहाँ रहता हूं, उनकी सेवा पूजा ठीक-ठीक होने पर सब काम ठीक होगा। ठाकुर सेवा ही असली है। उनके सन्तुष्ट होने पर सभी देव-देवियाँ संतुष्ट रहेंगे। "तस्मिन तुष्टे जगत तुष्टम्।' देखो सावधान! ठाकुर सेवा में जिससे कोई त्रुटि न हो। ठाकुर सेवा ही असल है।' वे नाना प्रकार से चेष्टा करके ठाकुर का भोग राग ठीक प्रकार से हो, उसकी व्यवस्था करते। भक्तों को लिखकर अच्छा चावल मँगाते। अच्छा घी, अच्छा चिउड़ा, जहाँ जो चीज अच्छी मिलती, वहाँ से मंगाकर ठाकुर को भोग देकर आनन्द करते। किसी भी वस्तु के ऊपर उनका जरा भी आकर्षण नहीं था। ठाकुर का भोग होने से ही उनको आनन्द, साधु भक्त प्रसाद पाएँगे—उससे ही उनको आनन्द। और जो ठाकुर के भोग के लिए सामान देते, उनके भक्ति-विश्वास के लिए ठाकुर के पास प्रार्थना करते।

महापुरुषजी के इस तितिक्षापूर्ण जीवन ने तत्कालीन श्रीरामकृष्ण संघ को (साधु और भक्त संघ को) कम प्रभावित नहीं किया। बाद में एक समय दाढ़ी बनाते बैठे हुए दाँत गिर जाने पर हँसते-हँसते हमलोगों को लक्ष्य कर बोले : 'अभी तो तुमलोग रजाई गद्दा, तकिया देकर कितने आराम से रहते हो। काशी में (१९०२ ई०) उसी हालघर में भूसा बिछा कर उसके ऊपर कम्बल बिछाकर सो जाता, ठंढी में सब अंग टेढ़े हो जाते। रात्रि और दोपहर में नींद थोड़ी भी नहीं होती। अच्छा ही होता, भगवान का नाम लेता। इसके अतिरिक्त ठंढी के कारण दाँत का दर्द बढ़ गया। मसूढ़ा फूल जाने से खूब कष्ट होता। एक टुकड़ा कपड़े के ऊपर सिर रखकर सोता, और सारी रात दाँत कटकटाता, कुछ खा नहीं पाता। परन्तु मैंने एक भी दांत तुड़वाया नहीं। सब दाँत मसूढ़ा फूल जाने से हिल-हिल कर गिर गये। यह जो दांत बनवाया है—वह भी खाने के लिए नहीं (महापुरुषजी खाने के समय दाँत व्यवहार नहीं करते) यह केवल शोभा के लिए। दाँत लगाने से दाढ़ी बनाने में सुविधा होती है, इसीलिए दांत पहिनकर दाढ़ी बनाता हूं। बाबा, कितना ही यत्न करो यह शरीर अनित्य है। "यत्ने तृण काष्टखानी रहे युग पारणाम। किन्तु यत्ने देह नाश ना ह्य वारण॥ तुमिकार, के तोमार कारे तुमि बोलबे आपन।" बाबा सब सहते जाओ, सहने जाओ सुख-दुःख समभाव से सहते जाओ। ठाकुर इसीलिए कहते—श, ष, स—ये सय, से रय। जे ना सय, से नाश हय, सह्य गुण बड़ा गुण। (अर्थात् जो सहता है, वही रहता है। जो नहीं सहता उसका नाश हो जाता है। सहिष्णुता बहुत बड़ा गुण है।)

१९१० ई० में रक्त आमाशय होने के बाद से जितने दिनों तक जीवित थे तब तक मसाला बिना झोल-भात— भात ही एक मात्र उनका पथ्य था। विभिन्न प्रकार के व्यंजन उनके सामने सजाने पर भी वे सब कुछ देख कर कहते : "वाह! वाह! अच्छा; अच्छा ठाकुर का खूब सुन्दर भोग हुआ है।' कभी अंगुली डुबाकर थोड़ा जिह्वा पर स्पर्श करते, किन्तु खाते झोल-भात। उनके सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत की यह बात विशेष उल्लेखनीय है "जिते रसे, जितं सर्वम्।' वे कहते 'रसना को

जीतने से ही सब कुछ पर विजय हो जाती है। मैं ठीक-ठीक कहता हूँ मेरा किसी वस्तु के प्रति जरा भी लोभ नहीं है।' और वे थे तितिक्षा की प्रतिमूर्ति। बीमार होने पर भी वे किसी की सेवा लेने में संकोच का अनुभव करते थे। सब चुपचाप सहन करते। बाद में जब शरीर खूब अस्वस्थ हो गया था तब वे डाक्टर के निर्देशानुसार ही चलते, और कभी हम सेवक लोगों को लक्ष्य करके कहते : इस शरीर का इतना यत्न कर रहा हूं क्यों जानते हो ? इस शरीर से भगवान लाभ हुआ है, इस शरीर से ठाकुर को देखा है, उनकी कितनी सेवा की है, उनका कितना संग किया है ? इसी हाथ से उनका स्पर्श किया है—इसीलिए इतना ! नहीं तो शरीर तो रक्त-मांस का पिंड छोड़कर और कुछ तो नहीं है ! इस शरीर से तुमलोगों को कितना कष्ट दे रहा हूँ।' उनकी बात सुनकर हमलोग अभिभूत हो जाते। वे हमलोगों के विशेष कल्याणकांक्षी थे। जिससे हमलोगों का कल्याण हो वही करते एवं उसी भाव से हमलोगों का जीवन नियन्त्रित करते। एक दिन वे खूब स्नेहविगलित स्वर में बोले : 'देखो (अपना शरीर दिखाकर) हर घड़ी इसके ऊपर देवबुद्धि रखना—मनुष्य बुद्धि करोगे तो मारे जाओगे। मैं ठाकुर का बच्चा हूँ। तुमलोगों के कल्याण के लिए ही उन्होंने अभी भी मुझे रखा है। जिससे तुमलोगों का कल्याण हो, वही मैं करता हूँ। यही चौबीसों घंटे मेरे पास रहना, यह क्या कम, भाग्य की बात है ! वे तुमलोगों का कल्याण करेंगे ही, इसीलिए मेरे पास लाये हैं। महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) देह त्याग के पूर्व अपने सेवकों को लक्ष्य कर बोले थे, "तुमलोगों ने मेरी सेवा की है—आशीर्वाद करता हूँ,— "तुमलोगों को ब्रह्मज्ञान हो।" मैं भी कहता हूँ ठाकुर में तुमलोगों को भक्ति लाभ हो।" कहते कहते उनका मुखमण्डल लाल, कंठस्वर गंभीर एवं हृदय आवेगपूर्ण हो गया, वे हठात् चुप हो गये।

ठाकुर के सत्य होने से हमलोग भी सत्य हैं—महापुरुषजी :

उन्होंने समग्र जीवन में सभी जगह कल्याणप्रद भूमिका ग्रहण की थी। काशी अद्वैताश्रम से २८-११-१९१४ तारीख को उन्होंने बेलुड़ मठ के एक ब्रह्मचारी को जो चिट्ठी लिखी थी उसमें हम देखते हैं : 'तुम और तुमलोग जो प्रभु के आश्रय, उनके भक्तों के आश्रय में आये हो, निश्चय ही अध्यात्म जगत में पूर्णतालाभ करोगे। तुमलोगों के लिए निश्चय ही हमलोग उत्तरदायी हैं, यह निश्चित धारणा रखना।' इस चिट्ठी में उन्होंने कितनी दायित्व पूर्ण बात लिखी थी यह सोचकर स्तम्भित हो जाना पड़ता है। अवश्य ही उन्होंने इस गहन दायित्व के सम्बन्ध में जानकर ही लिखे थे। वह सब मिथ्या प्रबोध के वाक्य नहीं, उनके प्राणों की बात है। कितना बड़ा आध्यात्मिक शक्ति सम्पन होकर या सर्वशक्तिमान श्री भगवान के साथ कितना एकात्म बोध होने पर कोई यह कह सकता है, "तुमलोगों के लिए वास्तव में हमलोग उत्तरदायी हैं।" यह विशेष रूप से विचारणीय है।

श्रीरामकृष्ण और उनके सन्देश

— स्वामी विवेकानन्द

आधुनिक संसार के लिए श्रीरामकृष्ण का सन्देश यही है—'मतवादों, आचारों, पंथों तथा गिरजाघरों एवं मन्दिरों की चिन्ता न करो। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो सार वस्तु अर्थात् आत्म-तत्त्व विद्यमान है, इसकी तुलना में ये सब तुच्छ हैं, और मनुष्य के अन्दर यह भाव जितना ही अधिक अभिव्यक्त होता है, वह उतना ही जगत्कल्याण के लिए सामर्थ्यवान हो जाता है। प्रथम इसी धर्म-धन का उपार्जन करो, किसी में दोष मत ढूँढ़ो, क्योंकि सभी मत, सभी पथ अच्छे हैं। अपने जीवन द्वारा यह दिखा दो कि धर्म का अर्थ न तो शब्द होता है, न नाम और न सम्प्रदाय, वरन् इसका अर्थ होता है आध्यात्मिक अनुभति। जिन्हें अनुभव हुआ है, वे ही इसे समझ सकते हैं। जिन्होंने धर्मलाभ कर लिया है, वे ही दूसरों में धर्मभाव संचारित कर सकते हैं, वे ही मनुष्य जाति के श्रेष्ठ आचार्य हो सकते हैं—केवल वे ही ज्योति की शक्ति हैं।'

जिस देश में ऐसे मनुष्य जितने ही अधिक पैदा होंगे, वह देश उतनी ही उन्नत अवस्था को पहुँच जायगा और जिस देश में ऐसे मनुष्य बिल्कुल नहीं हैं, वह नष्ट हो जायगा—वह किसी प्रकार नहीं बच सकता अतः मेरे गुरुदेव का मानव जाति के लिए यह सन्देश है कि 'प्रथम स्वयं धार्मिक बनो और सत्य की उपलब्धि करो।' वे चाहते थे कि तुम अपने भ्रातृ-स्वरूप समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए सर्वस्व त्याग दो। उनकी ऐसी इच्छा थी कि भ्रातृ-प्रेम के विषय में बातचीत बिल्कुल न करो, वरन् अपने शब्दों को सिद्ध करके दिखाओ। त्याग तथा प्रत्यक्षानुभूति का समय आ गया है, और इनसे ही तुम जगत् के सभी धर्मों में सामंजस्य देख पाओगे। तब तुम्हें प्रतीत होगा कि आपस में झगड़े की कोई आवश्यकता नहीं है और तभी तुम समग्र मानव-जाति की सेवा करने के लिए तैयार हो सकोगे। इस बात को स्पष्ट रूप से दिखा देने के लिए कि सब धर्मों में मूल तत्व एक ही है, मेरे गुरुदेव का अवतार हुआ था। अन्य धर्म-संस्थापकों ने स्वतन्त्र धर्मों का उपदेश दिया था और वे धर्म उनके नाम से प्रचलित हैं, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के इन महापुरुष ने स्वयं के लिए कोई भी दावा नहीं किया। उन्होंने किसी धर्म को क्षुब्ध नहीं किया, क्योंकि उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया था कि वास्तव में सब धर्म एक ही 'चिरन्तन धर्म' के अभिन्न अंग हैं।

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पी य र ले स

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड
इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०००६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।